दशलक्षण पर्व के संदर्भ में प्रस्तुत विभिन्न नाटक

''इन नाटकों का मंचन करके जनसामान्य को धर्म का महत्त्व बताएँ''

विशेष नोट - इस अंक में दिये गये समस्त नाटक-नाटिकाओं में पति-पत्नी का रोल करने हेतु या तो वास्तविक पति-पत्नी लें अथवा स्त्री-स्त्री या पुरुष-पुरुष से यह रोल करायें, किन्हीं भी पुरुष-स्त्री को पति-पत्नी का रोल न दें। इसके अतिरिक्त किन्हीं को भी दिगम्बर मुनि-आर्यिका न बनायें, उस स्थान पर फोटो का प्रयोग करें एवं पीछे से संवाद बुलवाएं।

(1) उत्तम क्षमा धर्म-नाटक

लेखिका-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

(क्रोध आत्मा की वैभाविक परिणति है और क्षमा आत्मा का स्वाभाविक गुण है। यह सभी जानते हैं कि क्रोध कषाय का त्याग करने से ही क्षमा गुण प्रकट होता है। क्रोध कषाय में प्राणी अधिक देर नहीं रह सकता, जबकि क्षमा के साथ दीर्घकाल तक शान्तिपूर्वक जीवन यापन कर सकता है।

अनुकूल परिस्थितियों में क्षमा धर्म का पालन सरल होता है किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में क्षमा धारण करना बड़ा कठिन होता है। इन्हीं दोनों पर आधरित प्रस्तुत है—एक लघु रूपक)

(मंच पर पर्दा खुलते ही)

(क्रोध नामक एक व्यक्ति अपने घर में प्रवेश करता है, उसके बच्चे और पत्नी सभी भय से काँपते हुए अपने-अपने काम में लग जाते हैं)

क्रोध—(गुस्से में बड़बड़ाता हुआ) खाना वाना मिलेगा या नहीं ?

महिला—हाँ, हाँ, अभी लाई भोजन की थाली, सब तैयार है। आप हाथ-मुँह धोकर आसन ग्रहण करें, बस खाना हाजिर है।

क्रोध—(जोर से) क्या मेरे हाथों में मैला लगा है जो हाथ धोने की आज्ञा दे रही हो, मुझे नहीं धोना हाथ-पैर।

महिला—जैसी आपकी मर्जी, लीजिए भोजन शुरू करिये (थाली सामने रख देती है। दाल में नमक डालना भूल गई थी अतः भोजन का ग्रास मुँह में जाते ही शुरू हो गया कोहराम।)

क्रोध—(ग्रास मुँह में रखते ही थाली उठाकर जोर से फेंकता है।) भाड़ में जाए ऐसा भोजन, तुझे तो भोजन बनाना भी नहीं आता है, जब देखो नमक ही गायब। निकल जा मेरे घर से, मुझे तेरी परवाह नहीं। दिन भर अपने लाड़लों को पकवान बनाकर खिलाएगी और मेरे सामने अलोना भोजन रखते तुझे शरम नहीं आती।

महिला—शान्ति रखें महाराज ! (हाथ जोड़ती हुई) मैं अभी नमक लाती हूँ। भूल से ऐसी गलती हो गई है, आप इतना नाराज मत हों।

क्रोध—(पैर से ठोकर मारते हुए) तेरी इतनी मजाल, मेरे सामने जबान खोल रही है। अच्छा! यदि तुम लोग इस घर से नहीं जाते हो तो मैं ही निकल जाता हूँ। (घर से बाहर निकलकर चला जाता है, बाहर आकर मैदान में जोर-जोर से हंसता और गीत गाता है)

क्रोध—हः हः हः...... मैंने कैसा कमाल दिखाया। मेरी फटकारों से सबके होश गुम हो गए।

गीत *—तर्ज-काली तेरी चोटी.......*

तीनों लोकों में हमारा बड़ा नाम है।
मैं हूँ बड़ा क्रोधी नाराजी मेरा काम है।
क्रोध यदि न करोगे तो कोई नहीं डरेगा।
झूठ को भी सच्चा साबित क्रोध ही तो करेगा।
जिसने मुझको पाला उससे सब परेशान हैं।।तीनो.।।

एक क्षमा नाम की महिला उधर मार्ग से निकलती है, आश्चर्य सहित क्रोध का गीत सुनकर मुस्कुराती हुई कहती है—

क्षमा—हूँ...... तो आकाशवाणी से महानुभाव क्रोधजी का संगीत प्रसारित हो रहा है।

क्रोध—(अकड़कर) लेकिन तू कौन होती है मेरे गीत का मजाक उड़ाने वाली ? बोल तेरा नाम क्या है ?

क्षमा—जी साहब, मेरा नाम है क्षमा, मेरा काम है क्षमा। मैं इस गुण से सभी का दिल जीतने में समर्थ हूँ।

क्रोध—इतना घमंड मत करो देवी जी ! मेरे ऊपर तुम्हारा कोई असर पड़ने वाला नहीं, अभी तो अपने घर में सबको छठ्ठी का दूध याद दिलाकर आया हूँ।

हः हः हः.........''जो मुझसे टकराएगा वह चूर-चूर हो जाएगा।''

क्षमा—भाई साहब ! आप गलत सोच रहे हैं। मैं तो एक ऐसी गंगा हूँ जिसमें सारी क्रोध की गंदगी भी आकर ठंडी और पवित्र हो जाती है। मैं क्षमा नाम की ऐसी चाँदनी हूँ जिसमें समस्त क्रोध का अन्धकार विलीन होकर प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है, मैं ऐसी पृथ्वी मैय्या हूँ जिस पर दुष्ट और सज्जन सभी आश्रय प्राप्त करते हैं।

क्रोध—बंद करो बकवास, मुझे प्रवचन देने लगीं महारानी जी, तेरे जैसी को तो मैं एक फूंक में उड़ा दूँगा, चली जा यहाँ से, अब मेरे सिर में बहुत तेज दर्द हो रहा है। (सिर पकड़कर बैठ जाता है।)

ऊपर से आकाशवाणी होती है—अरे क्रोध के बच्चे! तूने ही संसार का सर्वनाश किया है, तेरे कारण ही आज सारे देश में हिंसा का तांडव नृत्य हो रहा है, तू महापापी है तुझे कभी प्रकृति माफ नहीं कर सकती, तूने न जाने कितने परिवार, समाज और संगठनों को बर्बाद किया है, धिक्कार है, तुझे धिक्कार है।

क्रोध—(चौंककर इधर-उधर देखता है, भय से पूछता है) यह कौन कह रहा है ?

क्षमा—घबराओ मत ! यह ईश्वरीय वाणी है। भारत माता अपने एक बिगड़े सपूत को मधुर सम्बोधन प्रदान कर रही है, जिसका अभिप्राय स्पष्ट है—

तर्ज—मेरे अंगने में ....

तेरे परमातम में क्षमा का निवास है।
जिसे भूल क्रोध में तू करता विश्वास है।।टेक.।।
जैसे ठण्डी शीत से, जंगल भी जल जाते हैं।
वैसे ही उत्तम क्षमा से, कर्मवन जल जाते हैं।
आ जा तू भी स्व में, पर में न तेरा वास है।। तेरे परमातम.।।1।।
क्षमा के प्रभाव से, अग्नी भी शीतल होती है।
क्रोध के प्रभाव से, बुद्धि भी भ्रष्ट होती है।।
पारस प्रभु को देखो क्षमा ही जिनका वास है।। तेरे परमातम.।।2।।

(गीत के पश्चात् पुनः क्षमादेवी क्रोध को सम्बोधित करने लगती हैं)—

क्षमा—देखो मेरे भाई ! आप इस क्रोध के कारण कितने दुःखी हैं, यह भयंकर सिरदर्द आपके मस्तिष्क में ब्रेन हेमरेज, हाई ब्लडप्रेशर, हार्टअटैक जैसी अनेकों बीमारियाँ पैदा कर सकता है। आज आपके जैसे न जाने कितने मनुष्य अपने क्रोध के कारण स्वयं शारीरिक स्वास्थ्य से परेशान हैं और उनके परिवार तो संकट के गहरे गड्ढे में डूबे पड़े हैं।

ऐ धरती के सपूतों ! "जब जागो तभी सबेरा" इस सूक्ति को अपनाकर आज आप क्रोध का त्याग करें, अपनी अस्त-व्यस्त एवं डरी-सहमी गृहस्थी पुनः प्यार से सवारें, अपने आत्मधर्म को पहचानें, फिर देखेंगे कि आपकी जीवन बगिया में कैसी हरियाली आ गई है। वही पुष्प जो मुरझा गए थे क्षमा जल के सिंचन से खिल जाएंगे, वही क्यारी जो क्रोध की तपन से झुलस गई थी पुनः हरी हो जाएगी तथा आप अपने को, परिवार को, समाज को एवं सारे देश को खुशहाल पाएंगे।

सुनो ! मैं इसी सम्बन्ध में आपको एक मार्मिक पौराणिक कथानक सुनाती हूँ जिसमें स्वयं क्रोध के फल को भोगी हुई एक महिला की साक्षात् कहानी है—

(बीच में ही एक अप टू डेट डॉक्टर मंच पर प्रवेश करता है, जिसके एक हाथ में इंजेक्शन की सीरींज हैं और दूसरे हाथ में इंजेक्शन वाली एक छोटी शीशी में थोड़ा-सा लाल रंग है, वह जनता को सम्बोधित करता हुआ कहता है)—

डॉक्टर—अरे बन्धुओं ! सुनो, सुनो, एक क्रोधी मानव के खून की कहानी (चौंककर क्रोध और क्षमा दोनों उस डॉक्टर की ओर आश्चर्यचकित होकर देखने लगते हैं और उठकर डॉक्टर के समीप जाकर खड़े हो जाते हैं।)

डॉक्टर—(सबको दिखाते हुए) आप यह शीशी देख रहे हैं न, इसमें एस क्रोधी व्यक्ति का खून है। मैंने इसमें से आधे खून को इंजेक्शन में भरकर एक चूहे पर प्रयोग किया है। चूहे के शरीर में यह खून पहुँचते ही 22 मिनट में वह चूहा मनुष्य को काटने के लिए दौड़ पड़ा, 35 वें मिनट में स्वयं को काटना शुरू कर दिया और अंततः 50 मिनट के बाद उसने गुस्से में अपने पैर पटक-पटक कर खुद की जान गंवा दी। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि क्रोध के समय मनुष्य के खून में अत्यधिक विषैलापन आ जाता है जो उसके शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है, रक्त को विकृत करके बीमारियाँ उत्पन्न कराता है। जिस व्यक्ति में जितनी अधिक शांति और सहनशीलता होगी वह उतना अधिक स्वस्थ और पुण्यशाली बनेगा।

क्षमा फिर अपनी कथा शुरू करती है—

क्षमा—क्यों भाई साहब ! सुनी आपने साक्षात् घटना। एक कहानी मेरी भी सुनो—

एक ब्राह्मण की कन्या बड़ी क्रोधी स्वभाव की थी। उसे कोई तू कहकर यदि बोल देता तो वह आपे से बाहर हो जाती थी तथा उसकी दस पीढ़ियों तक को गाली दे-देकर सारा मोहल्ला सिर पर उठा लेती थी। उसके इस स्वभाव से पहले तो कोई उससे शादी करने को तैयार नहीं था किन्तु भाग्य से एक भोला-भाला ब्राह्मण सोमशर्मा मिल ही गया, जिसने

उसके पिता से कह दिया कि मैं इसे कभी ''तू'' कहकर नहीं बोलूंगा। कुछ दिन तक तो दोनों खूब अच्छी तरह रहे। एक दिन की बात है—

(मंच पर एक ओर दोनों बैठे हैं, दूसरी ओर अचानक दृश्य प्रारम्भ होता है। क्षमा कहानी सुना रही है)।

(बाहर से नाटक देखकर रात्रि में सोमशर्मा देर से घर आता है और दरवाजा खटखटाता है।)

सोमशर्मा—(जोर से आवाज देता हुआ) अरे ! दरवाजा खोलो, दरवाजा खोलो।

क्षमा—लेकिन गुस्से के कारण पत्नी दरवाजा नहीं खोलती है न ही कुछ बोलती है अतः सोमशर्मा को भी गुस्सा आ गया, वह बोल पड़ा।

सोमशर्मा—अरे मैं इतनी देर से आवाज दे रहा हूँ, तू बोलती भी नहीं है, कितनी गहरी नींद है तेरी।

क्षमा—तू शब्द मुँह से निकलते ही उस तुंकारी ने न आव देखा न ताव, उसने आकर दरवाजा खोला और गुस्से में घर से बाहर निकल गई और भागती चली गई। सोमशर्मा ने उसे पकड़ने का प्रयास भी किया किन्तु वह तो जंगल की ओर भाग गई, अकस्मात् उसे जंगल में एक बदमाश मिल गया और उसने उसका शील भंग करना चाहा। तब वह घबड़ाकर भगवान् का नाम स्मरण करती है। किसी तरह दैवी शक्ति से अपने शील की रक्षा करती हुई पुनः आगे भागती है।

(मंच पर एक महिला भागती हुई, सामने से एक युवक आता हुआ जो उस लड़की को पकड़ने की कोशिश करता है।)

तुंकारी—(घबड़ाती हुई) हे भगवान् ! मैं कहाँ आ गई, यह मेरे साथ कैसा अन्याय हो रहा है। (पढ़ती है) ''यह तन जाए तो जाए मेरा शील रतन ना जाए।''

(आकाशवाणी होती है) अरे दुष्ट ! इस पवित्र नारी को यदि हाथ भी लगाया तो तेरे हाथ जल जाएंगे। चल दूर हट जा......... (युवक डरकर भाग जाता है, तुंकारी इधर-उधर देखती है पुनः वहाँ से डरकर भाग जाती है।)

क्षमा—तुंकारी जब आगे बढ़ी तो कुछ चोरों से उसका मुकाबला हो गया, उन लोगों ने उसके सारे गहने उतरवा लिए और एक भील को सौंप दिया। भील ने भी उसका शील भंग करना चाहा। उस समय भी दैवी शक्ति ने उसकी रक्षा की। तब भील ने डरकर एक सेठ को सौंप दिया, देखो ! संसार की लीला उस सेठ ने भी तुंकारी पर बुरी नजर डाली वहाँ भी उसके शील की रक्षा हुई। अन्ततोगत्वा सेठ ने उसे एक रंगरेज के हाथों बेच दिया। वह रंगरेज अपने कंबल रंगने के लिए रोज तुंकारी के शरीर से प्रतिदिन खून निकालता, जिससे उसे बहुत कष्ट होता था, शरीर से प्रतिदिन खून निकलने के कारण वह बेचारी सूखकर काँटा हो गई थी।

मंच पर घावों से युक्त दुःखी तुंकारी प्रवेश करती है और कहती है—

तुंकारी—हे भगवन् ! मैंने अपने हाथों यह क्या कर डाला ? अब मुझे इस दुःख से मुक्ति कैसे मिलेगी ?

मुझे तो अपना घर भी पता नहीं है। मैं किसी तरह यदि घर पहुँच जाऊँ तो पुनः कभी क्रोध नहीं करूंगी, पतिदेव से बारंबार क्षमा याचना करूँगी। हे स्वामी ! मैंने क्रोध का फल चख लिया है किसी तरह मेरा संकट दूर करो। (चली जाती है) **क्षमा पुनः कथा प्रारम्भ करती है—**

क्षमा—एक दिन अचानक उधर उसका भाई आ गया। तुंकारी ने अपने भाई को पुकारा, भाई तो उसे पहचान भी न पाया था। तुंकारी भाई से चिपक कर रो पड़ी और अपने किए पर पछताने लगी। पुनः भाई ने राजा से कह-सुनकर अपनी बहन को रंगरेज से मुक्त कराया। उसके बाद उसने क्रोध का त्याग कर दिया।

क्रोध—अच्छा, तो मेरे द्वारा ऐसे-ऐसे अनर्थ हो जाते हैं। मुझे अपनी अज्ञानता का भान अब हो गया है। मेरे प्यारे बन्धुओं! आपने मेरा कमाल तो देख लिया है। यदि आपको इन हानियों से बचना है तो क्रोध कभी मत करना।

सभी पात्र मिलकर गीत गाते हैं—

—शेर छंद—

संसार में यदि क्रोध का विस्तार न होता।
तब तो सभी कषायों का उद्धार न होता।।
इस क्रोध से न जाने कितने घर बिगड़ गए।
इस क्रोध से ही देश और समाज ढह गए।।1।।

नहिं क्रोध के बल पर हुआ है क्रोध का शमन।
उत्तम क्षमा ही क्रोध का कर सकती है प्रशमन।।
यदि संगठित समाज करना चाहते हो तुम।
धारो स्वयं क्षमा व सहनशील बनो तुम।।2।।

भारत के सपूतों ! यही अमोघ शस्त्र है।
हिंसा से अहिंसा का सूत्र ही सशक्त है।।
सबके प्रति समभाव का झरना जो झर पड़े।
तो ''चंदनामती'' जगत में वैर ना बढ़े।।3।।

''बोलिए उत्तम क्षमा धर्म की जय''

(2) उत्तम मार्दव धर्म-नाटक

(''विद्या ददाति विनयं'')

लेखिका-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

मंच पर सूत्रधार प्रवेश करके कहता है—

प्यारे भाईयों एवं बहनों!

मार्दव धर्म मृदुता से उत्पन्न होता है । मान कषाय के साथ इस धर्म की पूर्ण शत्रुता है । ज्यों-ज्यों आपके हृदय से अहंकार नष्ट होता जाएगा त्यों-त्यों इस गुण का विकास प्रारम्भ होगा एवं पूर्ण अहंकार के नाश हो जाने पर आप उत्तम मार्दव धर्म से युक्त परमात्म पद प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तव में मानव का मान — अहं ही समस्त अनर्थों का मूल है इसीलिए वह इंसान से कभी-कभी हैवान भी बन जाता है । मान— अहंकार और इससे विपरीत मृदुता— नम्रवृत्ति (विनय) इन दोनों के बीच द्वन्द्व के साथ प्रस्तुत है **एक रूपक — अहंकार के कितने रूप** ?

(मंच पर मान/ अहंकार नामक एक व्यक्ति हाथ में थैला आदि सामान लिए प्रवेश करता है और गीत गाता हुआ टहल रहा है)—

तर्ज–मेरा जूता है जापानी ....

अहंकार— मेरा अहंकार है नाम, सारे जग में मेरी शान ,
आओ मेरे भाई बहनों! सीखो मुझसे मेरा काम।- 2
मस्तक ऊँचा करना सीखो , थोड़ा अकड़ के चलना सीखो,
कभी न झुकना किसी के सम्मुख, ये ही मान का है वरदान ।। 2

हंसता है — अः हः हः हः ...... कितनी सुंदर सूक्ति मैंने बताई है तुम सभी लोगों को।

मैं तुम सबको आह्वान करता हूँ आओ ! मेरे पास वह बहू आवे जिसकी सास से न बनती हो, वह शिष्य आवे जिसके गुरू से न पटती हो, वह पुत्र आवे जिसकी बाप से न बनती हो, मैं सबको एक जड़ी–बूटी दूँगा जिससे उन लोगों की अकल ठिकाने लग जायेगी। फिर हंसता है और थैले से कुछ बूटियाँ निकालकर दिखाता है इतना सुनते ही 2-3 स्त्री–पुरूष उसके पास आकर अपना दुखड़ा कहने लगते हैं—

एक स्त्री—अरे बाबा! मुझे तो कोई अच्छी सी जड़ी–बूटी दे दो ताकि मेरी सासू मेरे बस में हो जाए । उसके पास बड़ा माल है, बस, उसकी चाबी मुझे मिल जावे। भला मैं उसकी सेवा कब तक करूंगी ?

एक लड़का—सुनो बाबा, मुझे तो ऐसा मंत्र चाहिए कि स्कूल के सारे मास्टरजी मुझे बिना पढ़े पास कर दें और सारे स्कूल में मेरा खूब रौब जमा रहे।

दूसरा लड़का— बस तंग आ गया हूँ पिताजी से । हर वक्त दुकान पर ही बैठे रहते हैं । किसी दोस्त को अपने मन से चाय भी नहीं पिला सकता। कैसे इस पराधीनता से छूटूँ ? रे बाबा, है कोई जादू–टोना तेरे पास , जिससे पिताजी अपने आप मुझे सारी जिम्मेदारी सौंप दें। बस मैं तो सुखी हो जाऊँगा।

अहंकार— बैठो-बैठो, घबड़ाओ मत, मेरे पास तुम सबके दुःखों की दवा है। बस, दो–चार दिन में ही सबकी समस्या हल हो जायेगी। न कोई जड़ी और न बूटी, सुन लो मेरी बात अनूठी।

सभी लोग— तो जल्दी बताओ बाबा, जल्दी।

अहंकार— अरे भाई ! तुम सब मानव हो। किसी के सामने झुकना तुम्हारा अपमान है।ऐ बहू! देख, जरा घर में अकड़कर रहा कर, सबके साथ घमंड से बात किया कर फिर तो तेरी सास तेरे खूब नखरे देखेगी और अपने आप तुझे मालकिन बनाएगी। और मेरे बच्चों सुनो ! स्कूल हो या घर, जरा रौब दिखाकर , मूँछों पर ताव देते हुए घुसा करो तो स्वयं ही तुमसे सब डरेंगे । आजकल बिना गुण्डागर्दी के कोई भी नहीं डरता है।

(इतने में ही एक मृदुता नामक लड़की मंच पर आती है और इस प्रकार से सबको भड़काते देखकर कहती है।)

मृदुता—अरे बाबा ! ऐसी शिक्षाएं देकर आप हमारी समाज और देश को कहाँ ले जाना चाहते हैं ?

अहंकार—तो क्या देवी ! ये लोग अपने सिर सबके पैरों में रगड़ते फिरें। अब पुराने जमाने की बातें छोड़ दो । मानव का मस्तक उत्तमांग है, कोई नारियल थोड़े ही है जहाँ पाया वही फोड़ दिया।

मृदुता— (गीत) सुनो रे सुनो अहंकार की कहानी,
इसकी है सबसे बड़ी ये निशानी,
मान कषाय के वश में होकर किसी की एक न मानी।।
सुनो रे.........
रावण ने इस मान के कारण, सीताजी का हरण किया था

सबके समझाने पर भी नहिं, राम को उसने नमन किया था।
जिसके कारण लंका जल गई स्वयं मरा अभिमानी —
सुनो रे सुनो...।।1।।

(सभी लोग उस लड़की के आसपास खड़े होकर गीत सुनने लग जाते हैं।) **मृदुता अपना गीत गाती है—**

अहंकार को कभी न पालो, यदि अपना हित चाह रहे तुम।
तुम बदलोगे जग बदलेगा, यदि विनम्र व्यवहार करो तुम।।
सारी चीजें स्वयं मिलेंगी, विनय की यही निशानी ।।
सुनो रे........।।2।।

मृदुता कहती है—

सुनो मेरी प्यारी बहनों और भाइयों ! अपने जीवन में कभी मान-घमंड को स्थान मत देना । खुशहाल जीवन का राज है—नम्रता, मृदुता । जहाँ छोटे लोग अपने से बड़ों की पग-पग पर विनय करते हैं वहाँ बड़े स्वयं उन्हें अपना अधिकार सौंप देते हैं। अधिकार कभी अहंकार के बल पर प्राप्त नहीं हो सकते, विनयी बनकर कर्तव्य पालन करने से अधिकार तो तुम्हारे चरणों में खेलेंगे।

अहंकार— तुम तो मेरी सारी मेहनत पर पानी फेरना चाहती हो। यह उपदेश जाकर किसी साधु सभा में देना, यहाँ तो संसार की बातें चल रही हैं जहाँ थोड़ा बहुत गर्व किए बिना काम ही नहीं चल सकता । देखो! भगवान् रामचन्द्र को भी कितना गर्व था अपने कुल और परिवार का ।

मृदुता— यही तो भूल कर रहे हो , रामचन्द्र को अपने कुल का गर्व नहीं बल्कि गौरव था। गर्व और गौरव में महान अन्तर होता है । गर्व से अपना और दूसरे का अहित होता है लेकिन गौरव से आत्मसम्मान बढ़ता है। यदि रामचन्द्र को घमण्ड ही होता तो वे पिताजी के वचनों का पालन न करके अपने बाहुबल से अयोध्या का राज्य उसी दिन प्राप्त कर लेते किन्तु वे तो पिता के वचनों की रक्षा हेतु निर्जन वन में निकल पड़े। उनके लिए आज भी पंक्तियाँ कही जाती हैं—

रघुकुल रीति सदा चली आई ।
प्राण जायं पर वचन न जाई।।

(पास में खड़ी महिला कहती है)-

महिला—तो फिर आप ही बताइए बहन ! मैं क्या उपाय करूँ जिससे मेरी सासू का धन मुझे मिल जावे।

मृदुता—यह तो बड़ा आसान है, आप इतना परेशान क्यों होती हैं ? मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या आपने अपने पीहर में अपनी माँ की चाबी से भी इतना राग किया था ? यदि नहीं, तो ससुराल में इतनी उतावली क्यों ? पहले आप बहू के कर्त्तव्यों का पालन तो करें, सासूजी के मनोनुकूल प्रवृत्ति करें, सभी ननद, देवर, जेठ आदि के साथ विनय का व्यवहार करें। सबसे बड़ी समझदारी की बात तो यह है कि अपने पति की कमाई पर भरोसा करें। दूसरे की संपत्ति हड़पने का भाव भी मन में न आने दें इससे व्यक्ति कभी भी धनवान नहीं बन सकता। मेरी प्यारी बहना ! यदि तुम देश की एक आदर्श नारी बनना चाहती हो तो आज से ही अपने घरेलू व्यवहार को नम्रता में बदल दो। जैसे वृक्ष में फल लगते ही वह झुक जाता है न कि तन कर खड़ा हो जाता है उसी प्रकार गुणरूपी फलों से युक्त व्यक्ति सदैव झुकता है न कि घमंड करता है ।

दोनों लड़के— और बहन! हम लोगों को क्या करना चाहिए ?

मृदुता— आप तो हमारे देश के महान कर्णधार हैं। घमण्ड को स्थान देना आपके लिए कतई शोभा नहीं देता । देखो! अपने इतिहास को, महात्मा गांधी ने अपने नम्र व्यवहार से अंग्रेजों को भी झुका लिया अपने चरणों में। उन्हें आज भी प्यार से सभी राष्ट्रपिता कहते हैं।

आप लोग अपने माता-पिता एवं गुरुओं की पूरी विनय करें तो आपको थोड़ा परिश्रम करने पर भी अधिक फल मिलेगा क्योंकि संसार में माता-पिता और गुरू ही सच्चे हितैषी होते हैं वे कभी तुम्हें गलत बनने की सलाह नहीं दे सकते। कड़ुवी दवाई के समान अभी भले ही उनके वचन तुम्हें कटु प्रतीत होंगे किंतु जीवन को खुशहाल बनाने में वे वचन ही असली औषधि का काम करेंगे।

(अहंकार की ओर दृष्टिपात करती हुई मृदुता कहती है)

मृदुता— भाई अहंकार जी! आप मेरी बातों का बुरा मत मानना । हम तो किसी व्यक्ति से घृणा नहीं करते बल्कि उसके अवगुणों से घृणा करते हैं।यदि आप अहंकार को अपने जीवन से निकाल दें तो सभी लोग आपकी पूजा करने लग जाएँगे। किसी व्यक्ति से घृणा नहीं करते अपितु उसके अवगुणों से घृणा करते हैं।

अहंकार— मेरा अहंकार ही नाम, मेरा अहंकार ही काम,
यदि मैं इसको ही तज दूँ तो कैसे मेरा चलेगा नाम।

मेरे अहंकार गुण को छोड़कर तो मेरा अस्तित्व ही क्या रह जाएगा? तुम्हारा प्रभाव मेरे ऊपर तो पड़ नहीं सकता । हाँ, जो मुझे पराजित कर देगा मैं उसके साथ कुछ भी अहित नहीं करूंगा लेकिन अपना व्यापार तो चलाऊँगा ही, वर्ना धन्धा चौपट हो जायेगा।

मृदुता—खैर ! तुम तुम्हारी जानो । मैं तो सारी दुनिया के लिए यही कहूंगी कि विनय के बल पर संसार की क्या मोक्ष की सम्पत्ति भी मिल जाती है अतः अहंकार से दूर रहकर

विनय गुण अपनावें। एक छोटी सी पौराणिक कथा के द्वारा मैं इसका मर्म बताती हूँ — एक गुरूजी के पास दो शिष्य निमित्तशास्त्र पढ़ते थे। उनमें से एक बड़ा घमण्डी था और दूसरा विनयी था। एक बार दोनों शिष्य कहीं देशाटन को जा रहे थे। (मंच पर एक ओर दो बालकों को पगडंडी पर चलते हुए दिखाएं। पगडंडी की दोनों ओर छोटे-छोटे पेड़ हैं) –

घमंडी शिष्य—मेरा निमित्त शास्त्र कहता है कि इस रास्ते से अभी कोई हाथी निकलकर गया है ।

विनयी—भााई! मुझे तो लगता है कि इस रास्ते से कोई हथिनी निकली हो जो एक आँख से कानी है और उस हथिनी के ऊपर कोई गर्भवती रानी बैठी थी।

घमंडी शिष्य—नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है। मैं जो कहता हूँ वही ठीक है। देखो! साफ हाथी के पैर दिख रहे हैं।

मृदुता सुनाती है—दूसरा लड़का बेचारा चुप हो जाता है । दोनों चलते-चलते एक नगर में पहुंचते हैं। वहां मनाई जा रही खुशियां देखकर दोनों मित्र एक व्यक्ति से पूछते हैं । मंच पर किनारे एक व्यक्ति दिखावें।

दोनों मित्र—अरे भाई ! आज क्या बात है, यहां इतनी खुशियाँ क्यों मनाई जा रही हैं ?

व्यक्ति—अभी–अभी यहाँ राजमहल में रानी को पुत्र हुआ है इसीलिए खुशियाँ मनाई जा रही हैं। जाओ, जाओ, राजा आज सबको दान बांट रहे हैं, तुम्हें भी देंगे।

विनयी—क्यों भाई! क्या वह रानी अभी इसी मार्ग से हथिनी पर बैठकर गईं थीं ?

व्यक्ति—हाँ, हाँ अभी–अभी हथिनी पर बैठकर घूमती हुई इसी रास्ते से रानी साहब पधारी ही थीं कि पुत्ररत्न की प्राप्ति हो गई।

विनयी—क्या वह हथिनी कानी थी ?

व्यक्ति—हाँ ! वह तो जन्म से ही एक आंख से अन्धी है, लेकिन आपको यह कैसे पता लगा?

मृदुता कहती है —

(इतना सुनकर घमंडी शिष्य का मुंह उतर जाता है, पुनः दोनों चलते-चलते एक तालाब के पास पहुँचते हैं।वहाँ एक बुढ़िया पानी भरकर घड़ा सिर पर रखे हुए घर जा रही थी। रास्ते में दो पण्डित देखकर रुक जाती है और खड़ी–खड़ी उनसे पूछने लगती है)

(एक बुढ़िया मिट्टी का घड़ा सिर पर लिए दिखावें, उसमें थोड़ा पानी भी हो)

बुढ़िया— अरे पण्डित जी। जरा मेरे एक प्रश्न का उत्तर बता दोगे ?

दोनों मित्र— पूछो माँ जी, पूछो, क्या पूछ रही हो ?

बुढ़िया—बारह वर्ष हो गए , मेरे बेटे को विदेश गए हुए । उसका कोई समाचार नहीं है, वह वापस मेरे पास आएगा या नहीं ?

घमंडी— (तपाक से बोल पड़ा) अरी बुढ़िया! तेरा लड़का अब वापस नहीं आएगा।

मृदुता— (इतना सुनते ही बुढ़िया घबड़ा गई और उसका घड़ा गिरकर फूट गया, तब वह घमंडी बोला कि तेरा लड़का तो मर गया। लेकिन तभी विनयी शिष्य बोल पड़ा)

विनयी— घबड़ाओ मत माँ जी ! तुम्हारा बेटा मिलने ही वाला है, जाओ घर में जाकर देखो।

बुढ़िया— (रोती हुई) बेटा, तेरे मुँह में घी–शक्कर (दौड़कर घर जाती है)

मृदुता—घर जाते ही उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, बेटा सामने खड़ा था । बारह वर्ष के बिछड़े माँ–बेटे मिल जाते हैं । बुढ़िया जल्दी वापस आकर पण्डितजी को खूब बधाइयाँ देती है । यह देखकर घमंडी शिष्य और भी उदास हो गया । दोनों वापस गुरुजी के पास आ जाते हैं । घमण्डी शिष्य गुरूजी से कहता है! —

(गुरू और दोनों शिष्य मंच पर आते हैं)

शिष्य — (झुककर प्रणाम करते हुए) नमस्कार गुरूजी!

घमण्डी— (खड़े–खड़े ही हाथ जोड़कर) नमस्कार महाराज!

गुरूजी— क्यों बच्चों। सकुशल यात्रा हो गई ?

घमण्डी— (गुस्से में) आपने हम दोनों को निमित्त शास्त्र पढ़ाने में बहुत पक्षपात किया है। आपने इसे पता नहीं क्या-क्या अलग से पढ़ा दिया और मुझे वे विषय बताए भी नहीं। इसीलिए मेरी बातें झूठी हो गईं।

गुरूजी— मैने कभी भी उसे अलग से नहीं पढ़ाया, सब कुछ तुम दोनों को साथ ही पढ़ाया है। जरूर तुमने अपने घमण्ड में आकर कोई गलती की है। मैं सदैव तुम लोगों से यही कहा करता हूँ कि हर जगह विनय से काम लो , सोच–समझ कर उत्तर दो, लेकिन तुम तो मेरी मानते कब हो ? अच्छा बोलो क्या हुआ?

घमंडी—अपने लाड़ले शिष्य से ही पूछो कि रास्ते में हाथी के पैर स्पष्ट देखकर हथिनी का अनुमान, उसके कानी होने का और गर्भवती रानी को उस पर बैठने की सारी बातें

कैसे जान गया ?

गुरूजी—(विनयी शिष्य की ओर देखते हुए) क्यों वत्स ! तुम सत्य बताओ, तुमने कैसे यह सब बताया ?

विनयी—गुरुदेव। वे पैर हाथी के पैर से छोटे थे इसलिए मैंने हथिनी का पैर बताया । दूसरी बात आपने हम सभी को बताई थी कि हथिनी पर राजघराने की रानियाँ बैठा करती हैं। एक जगह मार्ग में हथिनी के बैठने के और रानी के हाथ टेककर उतरने के चिन्ह थे अतः मैंने सोचा कि गर्भवती रानी ही हाथ टेककर उतरेगी इसीलिए मैंने ऐसा बताया । तीसरी बात हथिनी कानी कैसे बताई सो सुनिये —पगडंडी के दोनों ओर पेड़ पौधे थे उनमें से एक ओर के पेड़–पौधे खाए हुए उजड़े मालूम पड़ते थे दूसरी ओर के बिलकुल ठीक थे इसीलिए मैंने अनुमान लगाया कि हथिनी कानी अवश्य होगी अन्यथा दोनों ओर के पौधे खाती।

गुरूजी—(घमंडी की ओर देखकर) सुनी तुमने इसकी बातें! मैंने सारी बातें दोनों को साथ ही बताई थी न ! अच्छा सुनाओ, दूसरी क्या घटना है ?

घमंडी— गुरूजी ! मैंने बुढ़िया के प्रश्न के समय उसका चेहरा उदास देखकर बताया कि तेरा बेटा नहीं आएगा, फिर घड़ा फूटा देखकर बताया कि बेटा मर गया है । यही तो आपने बताया था लेकिन मेरी बात झूठी निकल गई।

गुरूजी— (विनयी की ओर देखकर) तुमने क्या बताया ?

विनय— गुरुदेव । यद्यपि निमित्त तो कुछ ऐसा ही बता रहा था किन्तु बुढ़िया के सिर से घड़ा गिरकर फूटते ही पानी उसी नदी में मिल गया अतः इस मिलन को देखकर मैंने बताया कि लड़का आ चुका है । आपने यही तो बताया था, मुझे लगता है कि ये भाईसाहब पाठ भूल गए हैं और जल्दी में इन्होंने ऐसा उत्तर दे दिया।

(घमंडी शिष्य शर्मिन्दा सा मुँह लटकाए खड़ा है, गुरूजी उसे संबोधित करते हुए कहते हैं)

गुरूजी—देखो बेटा! यदि घमण्ड से तुम पढ़ोगे तो कभी भी पूर्ण ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते । गुरू की विनय, शास्त्र की विनय, सहपाठियों की विनय से ज्ञान सदैव बढ़ता है। तुम्हें उसका फल भी मिल चुका है अतः अपने इसी मित्र की भाँति विनयी बनोगे तो समस्त शास्त्रों में पारंगत हो जाओगे। गुरू की समस्त विद्याएँ तुम्हें प्राप्त करने में देर नहीं लगेगी।

(मंच पर खड़े अहंकार तथा अन्य समस्त स्त्री–पुरूषों से मृदुता कहती है)—

मृदुता— देखा तुमने अहंकार का फल। इसके कारण प्राप्त हुई विद्याएँ भी पलायमान हो जाती हैं। अब आप लोग स्वयं निर्णय करें कि आपको मान अच्छा लगता है या मार्दव ?

सभी एक साथ—हम तो मार्दव धर्म को ही स्वीकार करेंगे। (गीत गाते हैं)—

–शेर छंद–

मार्दव धरम हम सबको विनयभाव सिखाता ।
मत मान औ घमण्ड करो पाठ पढ़ाता।।
तुम मान वश में किसी भी पर को न सताना।
अमृत न दे सको तो कभी विष न पिलाना।।1।।
यदि प्यार से बोलोगे सभी मित्र बनेंगे।
मानी पुरुष के जग में सभी शत्रु बनेंगे।।
रहता न अहंकार चक्रवर्तियों का भी ।
हम क्षुद्र प्राणियों की क्या गणना हुआ करती।।2।।
परिवार में भी नम्रता से शांति बनेगी।
मृदुता से ही समाज में शुभ क्रान्ति बढ़ेगी।
भारत के सपूतों ! यदी तुम नम्र बनोगे।
श्री राम सदृश देश के सरताज बनोगे।।3।।
उत्तम धरम मार्दव को मुनीश्वर ही पालते ।
निज आत्म में रमण करें सब मद को टाल के।।
हम तुम भी एकदेश रूप धर्म को करें ।
तब ''चन्दनामती'' सभी गुण स्वयं को वरें।।4।।

''बोलिए उत्तम मार्दव धर्म की जय''

(3) उत्तम आर्जव धर्म (नाटक)

-आर्यिका सुव्रतमती (संघस्थ)

पात्र–1. राजा सगर 2. मंदोदरी धाय 3. विश्वभू मंत्री 4. सुयोधन राजा 5. अतिथि रानी 6. सुलसा राजकुमारी 7. मधुपिंगल 8. दो निमित्त ज्ञानी 9. महाकाल असुर (ब्राह्मण वेश में)-दो तीन साथी भी ब्राह्मण वेश में 10. पर्वत 11. पाँच-सात राजागण।

सूत्रधार–सुनो सुनो भाई सुनो सुनो, आर्जव धर्म की कथा सुनो.....

सुनो भाईयों एवं बहनों! दशलक्षण पर्व में प्रतिदिन आप एक-एक धर्म की कथा सुनते हैं। पहला धर्म है क्षमा धर्म, जिसे धारण कर व्यक्ति महान भगवान बन जाता है जैसा कि मरुभूति के जीव ने क्षमाधर्म को जीवन में धारण किया, तो वे एक दिन पार्श्वनाथ भगवान बन गए। दूसरा धर्म मार्दव धर्म है जिसका अर्थ है मान कषाय का त्याग। जो मान कषाय को छोड़ता है, उसे उच्च गोत्र का आस्रव होता है। तीसरा धर्म आर्जव धर्म है। आर्जव का मतलब है सरलता, ऋजुता अर्थात् मन-वचन-काय से कुटिलता नहीं करना ही आर्जव धर्म है। आज हम उसी आर्जव धर्म की कथा सुनाते हैं–

-प्रथम दृश्य-

(जम्बूद्वीप के जिस भरत क्षेत्र में हम और आप रहते हैं इसी भरत क्षेत्र में चारण युगल नाम का नगर था, उसमें सुयोधन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी 'अतिथि' नाम की पट्टरानी थी, इनके सुलसा नाम की एक सुन्दर पुत्री थी। उसके स्वयंवर के लिए सूचना होते ही बहुत से राजागण उस नगर में आ जाते हैं। अयोध्या में राजा सगर भी स्वयंवर में जाने के लिए उत्सुक थे, लेकिन सिर में तेल लगाने वाले के मुख से यह सुनकर कि सिर में एक सफेद केश आ गया है, राजा विरक्त हो जाता है, तभी उसकी मंदोदरी धाय आती है आगे क्या होता है देखिए–)

राजा सगर–(चिंतन मुद्रा में बैठे हैं) कुछ सोच रहे हैं।

मंदोदरी धाय–प्रणाम महाराज, क्या बात है? आज आप कुछ उदास दिख रहे हैं, आप क्या सोच रहे हैं ? क्या समस्या है ? हमें भी तो बताएं।

राजा सगर–धाय माँ! बात ही कुछ ऐसी है जिससे मेरा मन विक्षिप्त है। सुना है कि राजकुमारी सुलसा का स्वयंवर हो रहा है और बहुत से राजा लोग उसमें आ रहे हैं। मैं भी स्वयंवर में जाना चाहता था लेकिन मेरे सिर पर सफेद बाल आ गया है, अतः मैं सोच रहा हूँ कि क्या करूँ।

मंदोदरी धाय–राजन्! आप इससे विरक्त मत होइए। यह सफेद केश का फल तो किसी उत्तम वस्तु का लाभ बतला रहा है। अतः आप चिंता छोड़कर स्वयंवर में जाइए।

विश्वभू मंत्री का प्रवेश–

विश्वभू मंत्री–प्रणाम महाराज! कहिए क्या समस्या है ? हमें भी बताइए। हम उसे दूर करने का प्रयास करेंगे।

राजा सगर–समस्या यह है कि 'सुलसा' राजकुमारी का स्वयंवर हो रहा है। मैं भी उस स्वयंवर में जाना चाहता था लेकिन सिर में सफेद केश आ गया है। अतः मैं क्या करूँ।

विश्वभू मंत्री–बस इतनी सी बात है। महाराज आप बिल्कुल चिंता न करें, हम ऐसा प्रयत्न करते हैं कि वह 'सुलसा' स्वयंवर में आप का ही वरण करें।

-द्वितीय दृश्य-

(मंदोदरी धाय सुलसा राजकुमारी के पास जाती है। देखिए आगे–)

मंदोदरी धाय–नमस्ते राजकुमारी जी! मैं राजा सगर की धाय हूँ। मैं आपके पास यह कहने आई हूँ कि आप स्वयंवर में राजा सगर का ही वरण करना, क्योंकि राजा सगर बहुत गुणवान हैं और सब प्रकार से आपके योग्य हैं। राजा सगर आपको बहुत चाहते भी हैं।

राजकुमारी सुलसा–ठीक है। आपने जैसा कहा है मैं वैसा करने का प्रयास करूँगी।

(धाय राजकुमारी को समझाकर चली जाती है। इधर जब रानी अतिथि को ज्ञात होता है कि राजा सगर की धाय ने आकर सुलसा को राजा सगर में आसक्त किया है तब वह पुत्री से राजा सगर की निंदा कर अपने भाई के पुत्र मधुपिंगल के साथ विवाह करने को कहती है और मंदोदरी धाय को सुलसा के पास जाने से रोक देती है, तब क्या होता है आगे देखिए-)

-तृतीय दृश्य-

मंदोदरी धाय (राजा सगर से)–प्रणाम महाराज। महाराज! सुलसा की माँ ने मुझे सुलसा से मिलने को मना कर दिया है, वे चाहती हैं कि सुलसा उनके भाई के पुत्र मधुपिंगल का वरण करें। अब क्या करना चाहिए।

राजा सगर–मंत्री विश्वभू को बुलाकर कार्य सिद्धि के

लिए कहा जाए, क्योंकि मंत्री ने कहा था कि मैं इस कार्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा।

(मंत्री विश्वभू को बुलाया जाता है। मंत्री आकर कहता है–)

विश्वभू मंत्री– महाराज आपने मुझे याद किया है। बताइए मुझे क्या करना है ?

राजा सागर– मंत्री जी! अब आपको ऐसा उपाय करना है, जिससे सुलसा राजकुमारी मेरा ही वरण करें।

विश्वभू मंत्री– ठीक है महाराज! मैं ऐसा ही उपाय करता हूँ।

(मंत्री ने एक स्वयंवर विधान नामक ग्रंथ बनवाया और उसमें वर के अच्छे-बुरे लक्षण लिख दिए और उस ग्रंथ को संदूक में बंद करके गुप्तरूप से उसी नगर के बगीचे में गड़वा दिया। कुछ समय बाद वह संदूक निकाला गया और यह प्राचीन शास्त्र है ऐसा कहकर उस पुस्तक को स्वयंवर में राजाओं के बीच में बांचा गया।)

-चतुर्थ दृश्य-

(राजसभा का दृश्य– जिसमें कई राजाओं के साथ राजा सगर और मधुपिंगल भी हैं)

विश्वभू मंत्री– आपके नगर के बगीचे में यह 'स्वयंवर विधान' ग्रंथ प्राप्त हुआ है, जिसमें लिखा है कि कन्या और वर के समुदाय में जिसकी आँख सफेद और पीली हो, माला के द्वारा उसका सत्कार नहीं करना चाहिए, अन्यथा कन्या की मृत्यु या वर की मृत्यु हो सकती है।

(सभी राजागण एक साथ मधुपिंगल की ओर देखने लग जाते हैं क्योंकि उनमें ये बातें मौजूद थीं। तब मधुपिंगल यह सुनकर लज्जावश स्वयंवर मण्डप से बाहर चला जाता है और राजा सगर में आसक्त सुलसा राजकुमारी राजा सगर के गले में वरमाला डाल देती है अर्थात् दोनों का विवाह हो जाता है।)

-पंचम दृश्य-

(इधर मधुपिंगल हरिषेण गुरु के पास जाकर दैगम्बरी दीक्षा ले लेता है। एक दिन मुनिराज मधुपिंगल आहार के लिए किसी नगर में जा रहे थे कि रास्ते में दो निमित्तज्ञानी की आपस में हो रही वार्तालाप सुनते हैं। फिर क्या होता है ? देखिए–

(यहाँ पर आहार के लिए जाते हुए मुनि मुद्रा का चित्र रखें)

पहला निमित्तज्ञानी– (महाराज को देखकर) अरे! इन युवा महाराज के चिन्ह तो पृथ्वी का राज्य करने के योग्य हैं, परन्तु ये भिक्षा से भोजन करने वाले हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सामुद्रिक शास्त्रों से कोई प्रयोजन नहीं है सब व्यर्थ हैं।

दूसरा निमित्तज्ञानी– अरे! यह तो राज्य लक्ष्मी का ही उपभोग करता, किन्तु सगर के मंत्री ने झूठमूठ कृत्रिम शास्त्र दिखलाकर इसे दूषित ठहरा दिया इसलिए इसने लज्जावश दीक्षा ले ली है।

(सूत्रधार– मधुपिंगल मुनिराज ने यह सब बातें सुन ली। सुनते ही उन्हें एकदम क्रोध आ गया और उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं अगले भव में जन्म लेकर राजा सगर के समस्त वंश को नष्ट कर दूँगा और इस निदान के स्वरूप वह मरकर असुरेन्द्र जाति में महिष जाति की सेना की पहली कक्षा में चौंसठ हजार सुरों का नायक 'महाकाल' नाम का असुर हो गया। वहाँ कुअवधिज्ञान से पूर्वभव के समस्त वृत्तांत को जानकर क्रोध से भर गया और राजा सगर और उसके मंत्री से बदला लेने का उपाय करने लगा। वह महाकाल असुर राजा सगर को जान से न मारकर उनसे कोई भयंकर पाप करवाना चाहता था अतः इस चिंता में वह इधर-उधर ब्राह्मण का वेश धर घूम रहा था। क्षीरकदंब उपाध्याय का पुत्र पर्वत जिसने शास्त्र सभा में 'अजैर्यष्टव्यं' का अर्थ पशु से होम करने को बता दिया था, तब सभा में सभी लोगों ने उसका तिरस्कार कर दिया था जिससे वह अपमानित होकर वन में चला गया था और वहाँ पर उसे ब्राह्मण वेशधारी महाकाल असुर से भेंट हो गई, आगे क्या होता है देखिए–)

-छठा दृश्य (जंगल का दृश्य)-

महाकाल असुर (ब्राह्मण के वेश में)– (पर्वत को देखकर)- आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? आपका क्या परिचय है ?

ब्राह्मण पुत्र पर्वत– मैं स्वस्तिकावती नगरी से आया हूँ। मेरे पिता क्षीरकदंब उपाध्याय थे। वे विद्याध्ययन कराते थे। मैंने शास्त्र सभा में 'अजैर्यष्टव्यं' का अर्थ पशु से होम करने को कह दिया तो मुझे लोगों ने अपमानित किया, तो मैं वन में आ गया।

(सूत्रधार– महाकाल असुर ने सोचा कि यह हमारे शत्रु को नष्ट करने में समर्थ है अतः इसे अपने साथ लेकर उस महाकाल ने अथर्ववेद का अध्ययन कराया और कहा कि मंत्रों से यदि अग्नि में पशुओं की हिंसा की जावे, तो इष्ट फल की प्राप्ति होती है। फिर दोनों ने अयोध्या में जाकर यज्ञ द्वारा अपना प्रभाव फैलाना शुरू किया। महाकाल असुर ने अन्य क्रूर असुरों से अयोध्या में तीव्र ज्वर आदि पीड़ा उत्पन्न की एवं स्वयं पर्वत के साथ राजा सगर के पास जाकर बोला–)

-सातवां दृश्य (राजा सगर का महल)-

महाकाल असुर (ब्राह्मण वेश में)– राजन्! मैं आपके राज्य के इस घोर अमंगल को मंत्र सहित यज्ञ विधि द्वारा शीघ्र ही शांत कर दूँगा। आप मुझे यज्ञ की सिद्धि के लिए हजार पशुओं को और यज्ञ के लिए पदार्थों का संग्रह करा दो।

राजा सगर– ठीक है। आप शीघ्र ही राज्य के अमंगल

को दूर कीजिए। मैं सब वस्तुओं की व्यवस्था करता हूँ।

(एक पात्र में हवन करते हुए दिखावें)

(इधर पर्वत ने यज्ञ प्रारंभ कर प्राणियों को मंत्रित कर यज्ञ में डालना शुरू किया। उधर महाकाल असुर ने विक्रिया से प्राणियों को विमान में बिठाकर शरीर सहित आकाश में जाते हुए दिखा दिया और उपसर्ग को दूर कर दिया।)

(यहाँ पर विमान में पशुओं के चित्र दिखावें)

(इसके बाद पर्वत ने उत्तम जाति का घोड़ा और राजा की आज्ञा से सुलसा रानी को भी होम कर दिया। तब राजा को चिंता हुई कि यह प्राणी-हिंसा धर्म है या अधर्म। अतः राजा एक मुनिराज के पास जाता है और पूछता है-)

-आठवाँ दृश्य (मुनिराज का चित्र दिखावें)-

राजा सगर—नमोऽस्तु महाराज जी! हे स्वामिन्! मैंने जो कार्य प्रारंभ किया है उसका फल पुण्य रूप है या पाप रूप। आप हमें बताइए।

परदे के पीछे से—राजन्! आप जो कार्य कर रहे हैं यह बहुत बड़ा हिंसा पाप का कार्य है। आप इसे न करायें अन्यथा यह आपको सप्तम नरक में पहुँचा देगा। आप तो अहिंसा धर्म का पालन करें।

(राजा सगर ने जाकर सारी बातें पर्वत से कह दी। पर्वत ने कहा वह नंगा साधु कुछ नहीं जानता। महाकाल ने पुनः विमान में सुलसा रानी और पशुओं को देवपर्याय प्राप्त हुए दिखा दिया। इस माया से ठगा गया राजा पुनः पाप में प्रवृत्त हो गया और मरकर सातवें नरक चला गया।)

तो बंधुओं! यह है मायाचारी का दुष्परिणाम। राजा सगर ने मायाचारी से सुलसा का वरण किया और मधुपिंगल का अपमान किया, जिसके फलस्वरूप मधुपिंगल के जीव ने महाकाल असुर होकर राजा सगर से बदला लेकर उसे सप्तम नरक पहुँचा दिया। इस कहानी से सभी को शिक्षा लेना है कि कभी भी मायाचारी नहीं करना चाहिए। मन, वचन, काय को सरल रखना ही आर्जव धर्म का सार है।

(यहाँ पर नाटक के सभी पात्र मंच पर एक साथ खड़े होकर भजन को बोलते हुए हाव-भाव प्रदर्शित करें)

हे नाथ! आपसे मैं वरदान एक चाहूँ। वरदान.....
ऋजुता हृदय में लाकर, आर्जव धरम निभाऊँ। आर्जव.....
ना जाने क्यों कुटिलता का भाव आ ही जाता।
हे प्रभु! उसे हटाकर समता का भाव लाऊँ।। समता का.......
माया में फंस के मैंने मानव जनम गंवाया।
अनमोल इस रतन को अब ना गंवाने पाऊँ।। अब ना.....
हे नाथ! आपसे मैं वरदान एक चाहूँ। वरदान.....

जय बोलो उत्तम आर्जव धर्म की जय। दिव्यशक्ति गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की जय।

(4) उत्तम सत्य धर्म (नाटिका)

-आर्यिका सुदृढ़मती (संघस्थ)

नाटक के पात्र–राजा सिंहसेन-रानी रामदत्ता, सेठ समुद्रदत्त, पुरोहित शिवभूति (सत्यघोष), बहन जी (पाठशाला की मैडम), 2-3 बच्चे, दासी, नागरिक, सत्यघोष की पत्नी, सभासद।

-प्रथम दृश्य-

समय–सायंकाल, स्थान–दि. जैन मंदिर का भवन

(एक दि. जैन रात्रि पाठशाला का दृश्य जहाँ सभी बच्चे नीचे आसन पर लाइन से बैठे हैं। बाल विकास की पुस्तक लिए तभी वहाँ बहन जी (मैडम) का प्रवेश)

सभी बच्चे–(खड़े होकर) जय जिनेन्द्र बहन जी!

बहन जी–(कुर्सी पर बैठते हुए) जय जिनेन्द्र बच्चों!

(सभी बच्चे अपने स्थान पर बैठ जाते हैं)

बहन जी–बच्चों! आपने कल का पाठ याद कर लिया।

बच्चे–(एक स्वर में) जी बहन जी।

बहन जी–(एक बच्चे की ओर इशारा करके) अर्हम्! तुम बताओ धर्म कितने होते हैं ?

अर्हम्–(खड़े होकर) जी दश धर्म होते हैं।

बहन जी–अच्छा देशना! उनके नाम बताओ।

देशना–(दोनों हाथ जोड़कर खड़े होकर) उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य।

बहन जी–बहुत अच्छा! बैठ जाओ।

दिव्यांशी–बहन जी! इन 10 धर्मों का पालन कौन करते हैं ?

बहन जी–बेटा! मुनि, आर्यिका आदि साधु तो इनका पूर्ण पालन करते हैं। किन्तु श्रावकों को भी इनका आंशिक पालन अवश्य करना चाहिए।

आराध्या–बहन जी! मेरी मम्मी कह रही थी कि हमें कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। नहीं तो खोटी गति में जाना पड़ता है और इस जन्म में भी अपमानित होना पड़ता है।

बहन जी–हाँ बच्चों! असत्य कभी नहीं बोलना चाहिए क्योंकि एक न एक दिन सत्य की विजय अवश्य होती है। प्यारे बच्चों, मैं तुम्हें आज झूठ बोलने का फल क्या मिलता है इसकी एक सच्ची पौराणिक कथा सुनाती हूँ।

सभी बच्चे–(एक स्वर में खुश होकर) हाँ, हाँ हमें भी सुनना है।

-दूसरा दृश्य-

(मंच पर बहन जी सूत्रधार के रूप में कथा सुनाना प्रारंभ करती हैं)

तर्ज–इचक दाना........

कथा सुनो सब, कथा सुनो सब, कान खोलकर सुनना,
ध्यान लगाना।-2
सत्य धर्म की कथा को सुनकर, सत्य का साथ निभाना,
ध्यान लगाना
जीवन में कभी तुम झूठ मत बोलो।
सत्य वचन तुम तोल कर बोलो।।हो हो....
असत् वचन से दुर्गति मिलती, सत्य से मिले खजाना,
ध्यान लगाना। बोलो-बोलो हाँ.......
सच्चे मनुज का है बोलबाला।
झूठे का हरदम मुंह होता काला। हो-हो.....
''सत्यमेव जयते'' की सूक्ति जीवन में अपनाना, ध्यान लगाना।
बोलो-बोलो हाँ.....

(बच्चों! भरत क्षेत्र के सिंहपुर नगर में राजा सिंहसेन राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम रामदत्ता था। उसी नगर में एक शिवभूति नाम का पुरोहित ब्राह्मण रहता था, जो सदैव अपनी जनेऊ में कैंची बांधकर रखता था।

नगर का दृश्य–जहाँ एक ब्राह्मण जिसके सिर पर चोटी है तथा हाथ में पोथी लिए हुए गले में जनेऊ धारण किये हैं, जिसमें एक कैंची बांधे रहता है, बाजार में जा रहा है।

एक नागरिक–(हाथ जोड़कर) पंडित जी, प्रणाम।

पुरोहित–(आशीर्वाद देते हुए) खुश रहो! कैसे हो ?

नागरिक–(झुककर) सब आपकी कृपा है।

पुरोहित–(जनेऊ की कैंची दिखाते हुए) देखो मेरे पास सदैव ये कैंची रहती है। ''यदि मेरी जिह्वा असत्य बोल दे तो मैं उसको काट डालूँ।''

नागरिक–अरे पंडित जी! आप जैसे महापुरुष तो विरले ही होते हैं। तभी तो आपका ''सत्यघोष'' नाम सार्थक है।

(सूत्रधार–लोग विश्वास के साथ उसके पास अपना धन धरोहर रख देते थे और वह बहुत कुछ हड़प लेता था, किन्तु कोई उसे कुछ नहीं कह पाते थे और उसका ''सत्यघोष'' नाम प्रसिद्ध हो गया।)

-तृतीय दृश्य-

(सत्यघोष के घर का दृश्य)

सत्यघोष—(घर में बैठा है) अरी भाग्यवान्! बड़ी जोरों की भूख लगी है, भोजन तो ले आओ।

सत्यघोष की पत्नी—(अंदर से) अभी लाती हूँ। जरा धैर्य रखिये।

(तभी दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है)

सत्यघोष—अरे! देखो तो सही कौन आया है ?

सत्यघोष की पत्नी—अभी देखती हूं। (दरवाजा खोलती है)।

सत्यघोष की पत्नी—(सामने खड़े व्यक्ति को देखकर) कहिए महाशय क्या कार्य है ?

समुद्रदत्त सेठ—(नम्रतापूर्वक) मैं एक व्यापारी हूँ मुझे सत्यघोष जी से मिलना है।

सत्यघोष की पत्नी—आइए, अंदर आइये। (अंदर जाते हैं)

समुद्रदत्त सेठ—(अंदर पहुँचकर हाथ जोड़कर) पुरोहित जी मैंने आपका बड़ा नाम सुना है कि आप कभी भी असत्य नहीं बोलते हैं तथा किसी की भी धरोहर को अपने पास रखकर पुनः उसी प्रकार लौटा देते हैं।

सत्यघोष—(कुछ संकोचपूर्वक) अरे सेठ जी आप तो मेरी अधिक प्रशंसा कर रहे हैं। साधर्मी ही साधर्मी के काम आता है।

सेठ जी—(रत्न की पोटली देते हुए) मैं व्यापार हेतु समुद्र के पार धन कमाने जा रहा हूँ। अतः आप मेरे ये 5 रत्न धरोहर रूप में रख लीजिए।

सत्यघोष—(रत्न लेते हुए) आप निश्चिंत होकर जाइए। आपकी अमानत मेरे पास सुरक्षित रहेगी। (सेठ जी चले जाते हैं।)

(सूत्रधार—समुद्रदत्त सेठ विदेश में धन कमाने चले जाते हैं। जब 12 वर्ष पश्चात् वे लौटते हैं, तो अशुभ कर्म के उदय से उनका जहाज पानी में डूब जाता है, सारी संपत्ति नष्ट हो जाती है। वे जैसे-तैसे अपने प्राण बचाकर उसी नगर में आते हैं।)

-चतुर्थ दृश्य-

(सेठ समुद्रदत्त दीन-हीन अवस्था में सत्यघोष के घर पहुँचता है)

सेठ—(दुःखी होकर रोते हुए) पुरोहित जी मेरा बहुत बड़ा नुकसान हो गया, मैं बर्बाद हो गया। अब तो आपके पास धरोहर रखे रत्नों का ही सहारा है, मुझे वे मेरे रत्न दे दीजिए। जिससे मैं पुनः कुछ व्यापार कर सकूँ।

सत्यघोष—(सत्यघोष की नीयत बदल जाती है, वह चिल्लाकर कहता है) कौन हो तुम, कहाँ से आये हो और कौन से रत्नों की बात कर रहे हो। निकल जाओ यहाँ से।

सेठ—(आश्चर्य चकित होकर) अरे आप ये क्या कह रहे हैं।

सत्यघोष—(नौकर को आवाज देते हुए) अरे कोई है, निकालो इस पागल को यह मुझे झूठा बताता है, बाहर करो इसको।

(तभी एक नौकर आकर सेठ को धक्के देकर घर से निकाल देता है)

-पंचम दृश्य-

(रत्न न मिलने पर समुद्रदत्त की सारी चेष्टाएं पागल के समान हो गईं, वह गली-गली में विक्षिप्त होकर घूमने लगा।)

समुद्रदत्त—(नगर में गली में घूमते हुए) अरे मेरे पाँच रत्न सत्यघोष ने हड़प लिए हैं, वह झूठ बोल गया वह नहीं देता, मेरा न्याय करो, न्याय करो।

(वह रानी के महल के पास भी रात्रि में वृक्ष पर चढ़कर चिल्लाता रहता था।)

(**महल का दृश्य**—राजा, रानी बैठे हैं आपस में वार्तालाप करते हुए)

रानी रामदत्ता—(नीचे समुद्रदत्त की ओर इशारा करके) महाराज ये व्यक्ति लगभग 6 महीने से इसी तरह गली-गली में क्यों चिल्लाता है आप इसका न्याय कीजिए।

राजा—प्रिये! ये पागल विक्षिप्त है। तुम इस पर ध्यान मत दो।

रानी—नहीं राजन्! ये पागल नहीं है। इसका भेद पता लगाने की मुझे आज्ञा दीजिए। मैं इसका न्याय करूँगी।

राजा—ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा।

(रानी ने सत्यघोष को अपने साथ द्यूतक्रीड़ा के लिए आमंत्रित किया। रानी का कक्ष जहाँ सत्यघोष और रानी द्यूतक्रीड़ा कर रहे हैं। चौपड़ बिछाकर खेलते हुए)

रानी रामदत्त—(मुस्कुराकर खेलते हुए) पुरोहित जी! आज तो मैं ही जीतूंगी।

सत्यघोष—जैसी ईश्वर की मर्जी।

रानी—अगर आज मैं जीती तो तुम्हारी जनेऊ और अंगूठी मेरी हुई।

सत्यघोष—जैसी आपकी आज्ञा मुझे मंजूर है।

(और इस प्रकार रानी ने जुंए में पुरोहित की जनेऊ और अंगूठी जीतकर उसे अपनी दासी के हाथ चुपके से पुरोहित (सत्यघोष) की पत्नी के पास भेजा)

(पुरोहित के घर पहुँचकर)

दासी–(दरवाजे से) पंडितानी जी, ओ पंडितानी जी।

पंडितानी–(बाहर आकर) कौन है ? क्या चाहिए।

दासी–(जनेऊ अंगूठी दिखाकर) पुरोहित जी ने सेठ समुद्रत्त के 5 रत्न महल में मंगवाए हैं।

पंडितानी–(रत्नों की पोटली देते हुए) ठीक है ये लो संभालकर ले जाना। (दासी रत्न लाकर रानी को दे देती है)

-अंतिम दृश्य-

(राज दरबार में राजा, रानी अपने सिंहासन पर बैठे हैं पूरी सभा लगी है व्यापारी समुद्रदत्त और सत्यघोष भी सभा में खड़े हैं।)

राजा–(अनेक रत्नों में उन 5 रत्नों को मिलाकर) आओ समुद्रदत्त! तुम इन रत्नों में से अपने 5 रत्न पहचानकर ले लो।

समुद्रदत्त सेठ–(खुश होकर) जो आज्ञा राजन्! (रत्न छांटते हुए)

(और वह उनमें से अपने 5 रत्न निकाल लेता है। सत्यघोष सभा में अपना मस्तक नीचा करके खड़ा है)

सभी सभासद–(एक साथ) धिक्कार हो, सत्यघोष! धिक्कार हो!

एक सभासद–इस पापी को कठोर दण्ड मिलना चाहिए। इसने सत्य की आड़ लेकर भोले प्राणियों को लूटा है और अपने आपको सत्यघोष कहता है।

सत्यघोष–(गिड़गिड़ाते हुए हाथ जोड़कर) मुझे क्षमा कर दीजिए राजन्! क्षमा, क्षमा।

राजा–(गरजकर) नहीं! तुम्हारा अपराध क्षम्य नहीं है। तुमने भोले जीवों को ठगा है। तुम्हारा दण्ड निश्चित है।

(1) तीन थाली गोबर खाना (2) मल्लों के मुक्के खाना या अपनी सारी संपत्ति छोड़कर देश से निकल जाओ।

(तब उस पुरोहित ने क्रम से तीनों दण्ड भोगे आखिर अपमानित होकर देश से निकलना पड़ा)

-पाठशाला का दृश्य-

बहन जी–तो बच्चों इस प्रकार वह पुरोहित असत्य बोलकर इस भव में भी अपमानित हुआ और अंत में मरकर राजा के भंडार में सर्प हो गया और बहुत काल तक दुर्गति में भ्रमण करता रहा। अतः प्यारे बालकों! हमें कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि एक न एक दिन असत्य उजागर अवश्य होता है।

जगत में सूक्ति प्रसिद्ध है–''सत्यमेव जयते'', सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुंह काला।

सभी उच्च स्वर में एक साथ बोलते हैं–

उत्तम सत्य धर्म की जय, उत्तम सत्य धर्म की जय।

(पर्दा गिरता है)

उत्तम शौच धर्म पर अंग्रेजी नाटिका

(5) GREED : THE FATHER OF ALL THE SINS

(A Play related with Uttam Shauch Dharma)

-Aryika Swarnmati (Sanghasth)

(Participants–Seth Lubdhak (लुब्धक) & his wife Nagvasu (नागवसु), King Abhayvahan (अभयवाहन) & Queen Pundrika (पुण्डरीका), Two sons of Lubdhak-Garurdatta (गरुड़दत्त) & Nagdatta (नागदत्त), Some attendants of the King)

Once upon a time, a Seth named Lubdhak was living at Chamapur, where the King Abhayvahan was ruling over. The wife of the King was Pundrika, who was very compassionate. Nagvasu was the wife of Lubdhak and his two sons were-Garurdatta & Nagdatta.

Lubdhak was having plenty of wealth but he was a complete miser. Once he talks with his wife–

-First Scene-

Lubdhak–Nagvasu! I have spent a lot of money for the preparation of the golden pairs of many birds like-peacock, pigeon, parrot etc.

Nagvasu–Oh! I have seen them, they look so attractive.

Lubdhak–Have you also seen my golden pairs of animals like-deer, elephant, horse, lion, camel, he-goat etc.

Nagvasu–Oh! Yes, I have seen all of them, a number of valuable jewels like diamonds, pearls, ruby etc. have been decorated on their horns, tails and claws. Whoever will see these golden pairs, will be amazed and will praise you a lot.

Lubdhak–Off course, I think nobody can compare with me in such type of a possession.

Nagvasu–If it is so, you should remain so happy but I see that you live in permanent tension, what is the problem with you now ?

Lubdhak–My dear! I got started the construction of a pair of bulls but due to the shortage of gold, only one bull has been constructed yet. I always remain engrossed in the thoughts of getting this pair completed.

-Second Scene-

The rain is continuous for seven days, all the water reservoirs like rivers, ponds etc. are full of water.

In such a time, Lubdhak, due to his greed, goes to the river and starts collecting the wooden pieces flowing in it. After making a bundle of these, he keeps the bundle on his head and returns. He is thinking of earning money by selling these wooden pieces.

The Queen Pundrika is seeing all this incident from the window of her palace. She talks with the king-

Queen Pundrika–Swamin! I am very astonished to see that such a poor person is living under you rule that he is not conscious even of his life for earning his bread & butter.

Maharaj Abhayvahan–What you are saying Maharani ? I am not able to understand.

Queen Pundrika–I have just seen from my palace that one poor citizen is collecting wooden pieces from the overflowing river, if he flows with the water-current, what will happen?

Maharaj Abhayvahan–Maharani! Please don't be so anxious, I will look into this matter just now.

Queen Pundrika–Alright, Maharaj! please call him to you and fulfil his monetary needs at once.

(Maharaj sends his soldier to call Lubdhak. After sometime, Lubdhak is presented before the King.)

Maharaj Abhayvahan–Listen poor man! It appears that your economic condition is very pitiable. I regret that I could not pay attention to you previously but now you take whatever money you need from the royal treasure, I give you the permission in written.

Lubdhak–Maharaj! I do-not need anything except a bull.

Maharaj Abhayvahan–What ? you need a bull ?

Lubdhak–Yes Maharaj! I am having one bull and I have to complete its pair.

Maharaj Abhayvahan–Oh! there is no problem in it, you go and select from our group of bulls, whatever bull you need.

(Lubdhak goes to select the bull but after sometime, he returns to Maharaj again.)

Maharaj Abhayvahan–What happened gentleman! Could you find the needed bull ?

Lubdhak–Maharaj! even a single bull of your's is not comparable with my bull.

Maharaj Abhayvahan–(with astonishment)-What you are saying ? Which type of super-bull you are having, I can-not understand. Can you show it to me ?

Lubdhak (with happiness)–Oh Maharaj! please come to my home, I will surely show you my bull.

(Maharaj goes to the home of Lubdhak with some attendants. All of them enters a big hall there, where are kept the pairs of different birds & animals.)

Lubdhak–See Maharaj! these are my special pairs of birds & animals.

Maharaj Abhayvahan–Oh! I can-not believe my eyes, even I, can-not dare to have such valuable pairs of my own. It is beyond imagination that all of these are made of gold, diamond & different costly jewles. Seth! You are having so much wealth ? I was thinking that you are so poor as to collect the wooden-pieces from the river during heavy rains.

(In the meanwhile, the wife of Lubdhak i.e. Nagvasu came with golden plates full of valuable jewels to present to the King. She says to her husband–)

Nagvasu–Sethji! the King has come to our home for the first time, let's gift these jewels to him.

(Lubdhak wipes the sweat from his forehead, he is not able even to breath properly, he takes the plates with trembling hands but he can-not say anything because Maharaj is present infront.)

Lubdhak (speaks in very dim voice)–What you are doing Nagvasu! You will destroy me, I will never forgive you.

Maharaj Abhayvahan–What you are saying sethji ?

Lubdhak–Nothing.

(Lubdhak unwillingly tries to give the plates to Maharaj but due to atmost greed, his fingers starts appearing like the hood of the snake. Maharaj understands his greed.)

Maharaj Abhayvahan–Oh! greedy person! you are such a miser, how can you give anything to anybody. I name you-*Faṇhast* (फणहस्त). I hate you. I am ashamed that you are the citizen of my country.

(Saying these words, the King returns with his attendants, talking about the greed of Lubdhak.)

Lubdhak–I don't care even for the King. Now I have thought that I will go to Singhaldweep to earn the money.

Nagvasu (in anger)–Do whatever you want. We will not say anything now.

-Third Scene-

(Lubdhak goes to Singhaldweep and earns four crore rupees but while returning to home, the ship is drowned in the ocean. Lubdhak dies and due to his greed for his wealth, becomes a snake in his own home. This snake always used to protect the money and even the sons of Lubdhak could-not take any asset. What happens one day–)

Garurdatta (The eldest son of Lubdhak)–Brother Nagdatta! I could-not resist myself and today I killed that snake, now we can enjoy this wealth.

Nagdatta–Yes, Bhai! but we will not follow our father in this concern. We will spend this money on self and we will also donate for the poor and the needy.

(Religious Gentlemen! all of us should know that the snake died and was born in the fourth hell. Think! due to his greed, Seth Lubdhak could not live his life properly, he never gave anything to anybody, he never spent money for self-comforts, he only assembled the wealth and ultimately went to hell. So, always remember, there is no greater sin than greed, rather it is the father of all the sins.)

(6) उत्तम संयम धर्म (नाटिका)

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

एक महिला अपने 6-7 साल के बच्चे को पुकारती है–

माँ–बेटा संयम!

संयम–हाँ माँ!

माँ–संयम बेटा! इधर मेरे पास आओ।

संयम–माँ! मैं आ गया।

माँ–बेटा! तुम कमरे में क्या कर रहे थे ?

संयम–माँ! मैं दादी माँ से अपने नाम का मतलब पूछ रहा था।

माँ–(खुश होकर) अच्छा! तो क्या बताया दादी माँ ने ?

संयम–माँ! दादी माँ कह रही थीं कि संयम का मतलब होता है–नियम का अच्छी तरह से पालन करना। तो माँ! नियम किसे कहते हैं ?

माँ–सुनो बेटा! तुम रोज सुबह मंदिर जाते हो न! यह तुम्हारा एक नियम है।

संयम–अच्छा माँ! और क्या है नियम ?

माँ–तुम रात में खाना नहीं खाते हो, यह भी नियम है। और बताऊँ! तुम प्रत्येक रविवार को पाठशाला में जैनधर्म पढ़ने जाते हो, यह भी तो नियम है।

संयम–(खुशी से उछल पड़ता है) अरे वाह! मैं भी इतने सारे नियम पालन करता हूँ।

माँ–हाँ बेटा! बचपन से इन छोटे-छोटे नियम का पालन करते-करते व्यक्ति एक दिन पूर्ण संयम को धारण कर लेता है।

संयम–माँ! यह पूर्ण संयम क्या है ?

माँ–बेटा! घर-परिवार सब कुछ छोड़कर दीक्षा ले लेना अर्थात् महाराज जी/माताजी बन जाना पूर्ण संयम है।

संयम–माँ! यह तो बहुत कठिन है न!

माँ–बेटा! यह थोड़ा कठिन तो है परन्तु इससे व्यक्ति महान और पूज्य बन जाता है।

संयम–हाँ माँ! इसीलिए महाराज जी/माताजी ऊँचे तखत पर बैठते हैं और उनको सब लोग नमोस्तु करते हैं, उनके चरण छूते हैं।

माँ–हाँ बेटा! इन महाराज जी/माताजी का आशीर्वाद बहुत मंगलकारी होता है।

संयम–हाँ माँ! आप एक दिन बता रही थीं न कि मेरा जनम भी एक माताजी के आशीर्वाद से हुआ है।

माँ–हाँ संयम! उन माताजी ने मुझे एक मंत्र दिया था, उसकी मैंने खूब जाप की (बेटे को दुलार करते हुए) और मुझे बेटा मिल गया।

संयम–वो कौन सी माताजी हैं ?

माँ–उनका नाम है ज्ञानमती माताजी, इस समय वो सबसे बड़ी माताजी हैं।

(बेटा माँ से चिपक जाता है और कहता है)

संयम–माँ! आप मुझे कभी भी छोड़कर माताजी मत बन जाना।

माँ–ठीक है बेटा! (बेटे को चूम लेती है)

तभी अंदर से दादी माँ आ जाती हैं और उन्हें देखकर हँसते हुए कहती हैं-)

दादी माँ–क्या बात है भाई! आज तो माँ-बेटे में बड़ा प्यार हो रहा है।

(सभी हँसने लगते हैं और बेटा जाकर दादी की गोद में बैठ जाता है और कहता है-)

संयम–दादी माँ! मुझे महाराज जी वाली कोई कहानी सुनना है।

दादी माँ–ठीक है संयम बेटा! मैं तुम्हें एक अच्छी सी कहानी सुनाती हूँ, ध्यान से सुनना।

(उसी समय संयम की दोनों बड़ी बहनें भी बाहर से खेलकर आ जाती हैं) (दोनों के हाथ में बैडमिंटन दिखावें)

संयम–आओ जीजी! आप दोनों बहुत अच्छे समय पर आई हो, बैठो, दादी माँ एक कहानी सुनाने जा रही हैं।

(दोनों खुश हो जाती हैं और वहीं बैठ जाती हैं। संयम भी अपनी दोनों बहनों के पास बैठ जाता है)

दोनों बहनें–हाँ हाँ! हम भी कहानी सुनेंगे।

(इस कहानी को भी पात्रों से तैयार कराकर मंच पर नाटकरूप में दिखाएँ)

दादी माँ–आज से लगभग सौ साल पहले की बात है, एक महाराज जी थे, उनका नाम था श्री शान्तिसागर जी महाराज। (बच्चों से पूछती हैं) क्या नाम था उन महाराज जी का ?

बच्चे–श्री शान्तिसागर जी महाराज।

दादी माँ–एक बार वो किसी जंगल में बैठे थे, तभी दो व्यक्ति वहाँ पर आए और उनके पास में बैठ गए, उन दोनों ने महाराज जी को नमोस्तु भी नहीं किया।

बड़ी लड़की—दादी माँ! उन्होंने महाराज जी को नमोस्तु क्यों नहीं किया ?

दूसरी लड़की—क्या वे दोनों जैन नहीं थे क्या ?

दादी माँ—बच्चों! वे दोनों जैन थे, लेकिन उन्होंने महाराज जी से कहा कि हम आपको मुनि नहीं मानते हैं। (बच्चे आश्चर्य से दादी माँ का मुख देख रहे हैं)

संयम—तब तो महाराज जी को गुस्सा आ गया होगा!

दादी माँ—नहीं! उनको जरा भी गुस्सा नहीं आया, उन्होंने तो मुस्कुराते हुए उन्हें जवाब दिया कि कोई बात नहीं।

फिर उनमें से एक ने कहा कि आपको कोई ऋद्धि नहीं है, आपके अवधिज्ञान नहीं है इसलिए हम आपको मुनि तो नहीं मान सकते हैं।

बच्चे—फिर क्या हुआ दादी माँ ?

दादी माँ—फिर थोड़ी देर बाद महाराज जी ने उनसे पूछा कि सामने जो पेड़ दिखाई दे रहा है, वह किस चीज का है। तब एक व्यक्ति ने कहा कि वह आम का पेड़ है। तब महाराज जी ने कहा कि हम उसको आम का पेड़ नहीं मानते हैं। दूसरे व्यक्ति ने कहा-महाराज! आप किसी से भी पूछकर देख लें, हर कोई जानता है कि यह आम का पेड़ है। लेकिन महाराज जी नहीं माने उन्होंने कहा कि इस पेड़ में न तो आम हैं, न बौर हैं इसलिए हम इसको आम का पेड़ मान ही नहीं सकते हैं।

तब उनमें से एक व्यक्ति ने समझाते हुए कहा कि महाराज! जब आम का मौसम आएगा तब इसी पेड़ में बौर आएगा और आम आएंगे, अभी चूँकि आम का मौसम नहीं है इसलिए इसमें न तो बौर हैं और न आम के फल हैं।

यह सुनकर महाराज जी ने तुरंत कहा-महानुभावों! इसी प्रकार हम भी मुनि हैं, जब चौथा काल आएगा, तब इसी मुनिवेष में ही ऋद्धियाँ होंगी, अवधिज्ञान होगा, अभी चूँकि पंचमकाल चल रहा है इसलिए हमारे ऋद्धि आदि नहीं हैं।

बड़ी लड़की—अरे वाह! महाराज जी ने तो बहुत अच्छी बात कही दादी माँ!

दादी माँ—हाँ बेटी! इतना सुनते ही वे दोनों व्यक्ति महाराज जी के चरणों में लेट गए और बोले गुरुवर! हमें क्षमा कर दीजिए, हमने आपका आदर नहीं किया।

दूसरी लड़की—लेकिन दादी माँ! महाराज जी तो गुस्सा ही नहीं हुए थे!

दादी माँ—हाँ बेटी! उनका जैसा नाम था वैसे ही वे शान्ति के सागर थे।

संयम—इसके बाद क्या हुआ दादी माँ ?

दादी माँ—फिर उन दोनों ने महाराज जी से दीक्षा ले ली और दोनों महाराज जी बन गए। एक का नाम था श्री वीरसागर जी महाराज और दूसरे मुनिराज का श्रीचन्द्रसागर जी महाराज।

बड़ी लड़की—इन शान्तिसागर जी महाराज का नाम तो मैंने भी बहुत सुना है।

दूसरी लड़की—दादी माँ! ये महाराज जी बहुत ज्यादा तपस्या करते थे न!

दादी माँ—हाँ बेटी! ये बहुत तपस्वी थे। बताऊँ बच्चों! एक बार वे महाराज जी एक गुफा के अंदर ध्यान कर रहे थे। तभी एक साँप आया और महाराज जी के शरीर पर चढ़ गया।

संयम—(डरते हुए) अरे बाप रे! महाराज जी तो खूब डर गए होंगे और गुफा से बाहर आ गए होंगे ?

दादी माँ—(बेटे को गोद में बिठाते हुए) नहीं बेटा! वे महाराज जी जैसे के तैसे बैठे रहे, ध्यान करते रहे, फिर वह साँप महाराज जी के गले में लिपट गया।

संयम—मुझे तो साँप को दूर से ही देखकर डर लगता है।

दोनों बहनें—हाँ हाँ! मुझे भी साँप से बहुत डर लगता है।

संयम—दादी माँ! फिर क्या हुआ ?

दादी माँ—थोड़ी देर बाद साँप जहाँ से आया था, वहाँ चला गया।

बड़ी लड़की—वे महाराज जी तो वास्तव में बहुत निडर थे।

दादी माँ—हाँ, वे बहुत निडर थे। और बताऊँ बच्चों.......

वे शान्तिसागर जी महाराज हमेशा कहा करते थे कि संयम धारण करने में कभी भी डरना नहीं चाहिए क्योंकि संयम के द्वारा मनुष्य अपनी आत्मा को भगवान बना सकता है। तो बच्चों! कैसी लगी कहानी ?

सभी बच्चे—बहुत अच्छी, दादी माँ!

दादी माँ—जय बोलो श्री शान्तिसागर जी महाराज की!

बच्चे—जय।

दादी माँ—उत्तम संयम धर्म की।

बच्चे—जय।

संयम—दादी माँ! अब मैं आपसे रोज एक कहानी सुनूँगा, आपको तो बहुत सारी कहानी आती हैं न, दादी माँ!

दादी माँ—हाँ बेटा! मैंने तुम्हारे लिए खूब सारी कहानियाँ पढ़ रखी हैं, अब मैं तुम्हें रोज एक कहानी सुनाऊँगी।

(7) उत्तम तप धर्म (नाटिका)

-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

जिनमंदिर के बाहर का दृश्य है, 4-5 महिलाएँ बाहर निकलते-निकलते आपस में वार्तालाप कर रही हैं-

महिला 1—बहन! एक बात है दशलक्षण पर्व के दिनों में मन बड़ा प्रसन्न रहता है।

महिला 2—हाँ बहन! यह बात तो मैं भी महसूस करती हूँ कि अन्य दिनों की अपेक्षा इन दस दिनों में मन बड़ा शान्त रहता है।

महिला 3—मुझे तो दशलक्षण पर्व की पूजा करने में बड़ा ही आनंद आता है।

महिला 4—बहन! तुम दशलक्षण पर्व की कौन सी पूजा करती हो ?

महिला 3—मैं तो पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित पूजा ही करती हूँ दस दिन।

महिला 4—लेकिन बहन! वह पूजा तो बहुत बड़ी है, उसमें समय ज्यादा लग जाता है।

महिला 5—बहन! पूजा तो मैं भी वही करती हूँ। यह पूजा थोड़ी बड़ी जरूर है, लेकिन इस पूजा के माध्यम से शास्त्रों की अनेक बातें भी ज्ञात हो जाती हैं। (सब महिलाएँ वहीं चबूतरे पर बैठ जाती हैं)

महिला 3—हाँ! जैसे आज उत्तम तप का दिन है तो इस पूजा में पूज्य माताजी ने तप की महिमा बताते हुए लिखा है कि—

दशलक्षणमय सार्वधर्म को, नितप्रति शीश नमाते हैं।
उत्तम बारह तप प्रगटित हों, यही भावना भाते हैं।।

अनशन आदि बाह्य तप षट्, अन्तरंग तप भी हैं षट्।
ये कर्मेंधन भस्म करें, स्वर्ग-मोक्ष के सौख्य भरें।।

सुरगण नरभव को तरसें, तप को चाहें शिवरुचि से।
नरक-स्वर्ग तिर्यग्गति में, तप नहिं यह तप नरभव में।।

महिला 1—(बीच में ही) अरे वाह! लगता है तुमको यह पूजा बहुत अच्छी तरह से याद है!

महिला 3—हाँ बहन! मैं साल में तीनों बार के दशलक्षण पर्व में यही पूजा करती हूँ न! इसलिए मुझे यह पूजा याद हो गई है।

महिला 2—बहन! इसका थोड़ा अर्थ भी बताओ न! तुमको तो मालूम होगा।

महिला 3—हाँ सुनो बहन! पूज्य माताजी ने इसमें बताया है कि तप के 12 भेद होते हैं—6 बाह्य तप और 6 अन्तरंग तप।

महिला 4—क्या हम लोग भी इनमें से कोई तप कर सकते हैं ?

महिला 3—हाँ हाँ क्यों नहीं! जैसे महीने में एक बार उपवास या एकाशन करना, भूख से थोड़ा कम खाना, दूध-नमक, घी आदि में से किसी भी एक रस का त्याग करके भोजन करना आदि के द्वारा हम भी बाह्य तप कर सकते हैं।

महिला 5—अच्छा! यह तो मैं बहुत आराम से कर सकती हूँ।

महिला 2—और बहन! इस पूजा में और क्या लिखा है ?

महिला 3—देखो बहन! पूज्य माताजी ने इसमें लिखा है कि स्वर्ग के देवता लोग हमारी इस मनुष्यपर्याय को पाने के लिए तरसते हैं।

महिला 1—ऐसा क्यों बहन!

महिला 3—ऐसा इसलिए कि तप के द्वारा ही मोक्षपद को प्राप्त किया जा सकता है लेकिन देवताओं को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हो पाता है।

महिला 4—तो क्या बहन! देवता लोग तपस्या नहीं कर सकते हैं ?

महिला 3—नहीं बहन! देवताओं के पास अनेक प्रकार का वैभव है उसी में वे रमे रहते हैं लेकिन उनमें संयम धारण करने की, तपस्या करने की योग्यता नहीं होती है।

महिला 1—हाँ, मैंने एक बार पंचकल्याणक में सुना था कि देवता संयम धारण नहीं कर सकते हैं इसलिए भगवान की पालकी को उठाने का सर्वप्रथम अधिकार मनुष्यों को मिलता है।

महिला 3—हाँ बहन! मनुष्यगति के सिवाय शेष तीन गतियों में यह तप धर्म पालने की सामर्थ्य नहीं है।

महिला 5—बहन! एक बात मेरी समझ में नहीं आई कि तीर्थंकर भगवान क्यों तपस्या करते हैं ? जबकि वे तो भगवान बनने ही वाले हैं ?

महिला 3—हाँ बहन! यही तो विशेष बात है कि तीर्थंकर भगवान भी तप करते हैं, इस तप की इतनी महिमा है।

(उसी समय एक और महिला मंदिर से निकलती है और वहीं खड़ी हो जाती है)

महिला 6—बहन! आज अवश्य ही तुम लोग उत्तम तप के बारे में बात कर रही होंगी।

महिला 1—हाँ बहन आओ! तुम भी बैठो।

महिला 6—बहन! वास्तव में तप की कितनी महिमा है। एक बार मैंने सुना था कि णमोकार व्रत, चौंसठ ऋद्धि व्रत, रविव्रत आदि व्रत करना भी तप की श्रेणी में आता है।

महिला 3—हाँ बहन! इन व्रतों की तो इतनी महिमा है कि पूछो मत।

महिला 4—रविव्रत करने से दरिद्री की गरीबी दूर हो जाती है, चौंसठ ऋद्धि व्रत के प्रभाव से स्वस्थ शरीर की प्राप्ति होती है और.....

महिला 6—(बीच में) बहन! याद आया, रोहिणी व्रत करने से रानी रोहिणी यह नहीं जानती थी कि रोना क्या होता है ?

महिला 5—अच्छा! बहन! जल्दी बताओ, मैं भी यह व्रत करूँगी क्योंकि मुझे तो जरा-जरा सी बात पर बहुत जल्दी रोना आ जाता है।

(सभी महिलाएँ हँसने लगती हैं)

महिला 6—हाँ सुनो! बहन! रोहिणी नाम की एक रानी थी, उसने अपने पूर्वभव में एक बार मुनिराज से रोहिणी व्रत लिया।

महिला 1—यह व्रत कौन सी तिथि को करते हैं ?

महिला 6—प्रत्येक महीने में सत्ताइस दिन में 'रोहिणी' नक्षत्र आने पर यह व्रत किया जाता है।

महिला 5—अच्छा बहन! फिर क्या हुआ?

महिला 6—इस व्रत के प्रभाव से वह हस्तिनापुर के राजा अशोक की रानी रोहिणी बनी। एक बार वह महल की छत पर बैठी थी, नीचे देखा तो कुछ महिलाएँ रोती हुई जा रही थीं। रोहिणी ने अपने पति से पूछा—यह क्या कर रही हैं?

राजा ने कहा कि ये महिलाएँ रो रही हैं ? रानी ने पूछा—ये रोना क्या होता है ? तब राजा को थोड़ा गुस्सा आया और उन्होंने अपने छोटे से पुत्र को महल की छत से नीचे फेंक दिया।

महिला 5—तब तो रानी खूब रोई होगी ?

महिला 6—नहीं बहन! यही तो बात है, उसके पुत्र को देवों ने नीचे नहीं गिरने दिया, बल्कि मार्ग में ही एक सिंहासन पर बिठा दिया।

महिला 2—अरे वाह! फिर क्या हुआ ?

महिला 6—फिर राजा ने एक मुनि से पूछा कि महाराज! मेरी पत्नी रोहिणी ने ऐसा कौन सा पुण्य किया है कि उसको 'रोना क्या होता है' यह नहीं ज्ञात है। तब महाराज जी ने बताया कि इसने पूर्व जन्म में रोहिणी व्रत किया है उसी की महिमा है यह!

अच्छा बहन! मैं तो यह व्रत जरूर लूँगी।

महिला 2—एक बात पूछूँ बहन!

महिला 5—हाँ हाँ पूछो बहन!

महिला 2—मैंने एक बार कहीं पढ़ा था कि ''स्वाध्यायः परमं तपः'' तो इसका क्या मतलब है ?

महिला 5—इसका मतलब यही है कि प्रतिदिन शास्त्र का विधिपूर्वक/आदरपूर्वक स्वाध्याय करना भी एक प्रकार का तप है।

महिला 2—मुझे तो ये ही समझ में नहीं आता है कि कौन से शास्त्र का स्वाध्याय करूँ ? अलमारी में इतने सारे शास्त्र रहते हैं उनमें से किसी एक शास्त्र का चयन करना बड़ा कठिन काम है।

महिला 3—बहन! मैंने एक बार पारस चैनल पर पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी के प्रवचन में सुना था कि श्रावकों को क्रम-क्रम से एक-एक अनुयोग का स्वाध्याय करना चाहिए अर्थात् पहले प्रथमानुयोग, फिर करणानुयोग, इसके बाद चरणानुयोग पुनः सबसे अन्त में द्रव्यानुयोग पढ़ना चाहिए।

महिला 1—इन प्रथमानुयोग आदि में क्या-क्या पढ़ने योग्य है ?

महिला 3—देखो! महान पुरुषों, सती नारियों के चरित्र का वर्णन करने वाले ग्रंथ प्रथमानुयोग हैं। लोक-अलोक का वर्णन जिसमें है, वे करणानुयोग ग्रंथ हैं, मुनियों एवं श्रावकों के चारित्र का वर्णन चरणानुयोग ग्रंथों में है तथा आत्मा की बात बताने वाले ग्रंथ द्रव्यानुयोग कहलाते हैं।

महिला 1—अच्छा! तो इसका मतलब यह है कि हमें सबसे पहले प्रथमानुयोग के ग्रंथ पढ़ना है।

महिला 3—हाँ बहन! जैसे-आदिपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, जीवन्धरचरित्र, पाण्डवपुराण इनमें से कोई एक शास्त्र थोड़ा-थोड़ा रोज पढ़ो पुनः एक ग्रंथ पूरा हो जाने पर ही दूसरा ग्रंथ प्रारंभ करना चाहिए।

महिला 4—हाँ बहन! तुम ठीक कह रही हो, पूरा ग्रंथ पढ़ने के बाद ही तो उसका विषय पूरी तरह समझ में आ सकेगा।

महिला 2—अच्छा बहन! मुझे लगता है कि अब हमें घर चलना चाहिए, काफी देर हो गई है।

महिला 5—हाँ बहन! चलते हैं।

महिला 3—आज तो मुझे बहुत सारी नई-नई बातें जानने का अवसर मिला, बहुत अच्छा लगा।

महिला 2—हाँ! अब जल्दी घर के काम निपटाकर पुनः दोपहर में मंदिर आना है पण्डित जी तत्त्वार्थसूत्र की पूजा कराएँगे तथा तत्त्वार्थसूत्र का वाचन भी होगा।

सभी एक साथ—हाँ हाँ चलो।

जय बोलो उत्तम तप धर्म की जय।

(8) उत्तम त्याग धर्म (शास्त्रदान की महिमा) -नाटक

-ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

सूत्रधार—मेरे प्यारे भाइयों और बहनों! आज मैं आपको ले चलता हूँ भारतवर्ष के कुरुमरी गाँव में, जहाँ एक ग्वाले ने एक शास्त्र का दान देकर किस प्रकार कालान्तर में दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति कर ली, तो आइए चलते हैं उस प्यारे से गांव में।

गोविन्द नाम का एक सीधा-सादा, भोला-भाला ग्वाला प्रतिदिन सभी को दूध देकर सबकी सेवा करता है, वह सभी को बहुत प्रेम करता है, विनय करता है और सभी का स्नेहपात्र है। एक बार की बात है वह गाय लेकर जंगल में गुनगुनाता हुआ अपनी धुन में चला जा रहा था, तभी उसने देखा—

गोविन्द ग्वाला—

मैं हूँ इक ग्वाला मतवाला, दूध सभी को देने वाला,
गउओं का रक्षक कहलाता, छोटे-बड़े सभी को भाता।
थोड़ा खाकर भी खुश रहता, दीन दुखी की सेवा करता,
नहीं कभी करता आराम, कुरूमरी है मेरा धाम।।

मैं हूँ इक........।।

(थोड़ी दूर तक चला जाता है फिर सोचता है)—

अरे रे! मुझे ऐसा क्यों लगता है कि उस वृक्ष की कोटर में कुछ रखा है, चलूं लौटकर देख ही लेता हूँ क्या है ? वर्ना, मेरे मन में ना, उथल-पुथल मची ही रहेगी। (लौटकर देखता है) अरे वाह! यह तो कोई पुस्तक लगती है। (उठाता है, देखता है) थोड़ा तो मैं भी पढ़ा हूँ, देखूँ तो (खोलकर) ओ हो! यह तो जैनधर्म का कोई पवित्र ग्रंथ है। (मस्तक पर लगाता है और कहता है) पता नहीं इसे यहाँ कौन रख गया, मैं तो इसे अपने घर ले जाऊँगा और रोज इसकी पूजा करूँगा। (मस्तक पर रखकर बड़ा प्रसन्न होकर गाता हुआ चला जाता है)—

मैं हूँ इक ग्वाला मतवाला.........

सूत्रधार—वह ग्वाला उस ग्रंथ को अपने घर पर ले गया और रोज-रोज उसकी पूजा करने लगा। एक दिन की बात है दूध लेकर जाते समय उसने पद्मनंदि नामक मुनिराज को उस गांव से जाते हुए देखा। मुनिराज को देखते ही उसे लगा कि क्यों न वह ग्रंथ मैं महाराज को दे दूँ, बस वह सामान छोड़कर मुनि की ओर दौड़ पड़ा—

(महाराजश्री चले जा रहे हैं तभी ग्वाला दौड़कर उन्हें प्रणाम कर कहता है—)

ग्वाला—(प्रणाम कर) गुरुदेव! ओ गुरुदेव! तनिक रुकिए तो, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।

मुनिराज—(रुककर) कल्याणमस्तु भव्यात्मन्! कहो, तुम कौन हो ?

ग्वाला—हे प्रभो! मैं एक ग्वाला हूँ, मेरा नाम है गोविन्द, मैं दूध बेचकर अपना जीवन यापन करता हूँ।

मुनिराज—कहो वत्स! क्या चाहते हो ?

ग्वाला—महाराज! आप दो क्षण के लिए ठहरिए, मेरे पास एक ग्रंथ है, उसे मैं आपको भेंट करना चाहता हूँ।

मुनिराज—(एक वृक्ष के नीचे बैठकर) ठीक है भाई, तुम चाहते हो तो मैं बैठ जाता हूँ। देखूँ तो, तुम मुझे क्या देना चाहते हो ?

ग्वाला—(दौड़कर जाते हुए) महाराज! मैं अभी गया और अभी आया। (घर से ग्रंथ लाकर उसे मस्तक पर चढ़ाकर पुनः मुनि को देते हुए) हे स्वामिन्! अगर आप इसे ग्रहण करेंगे तो मुझे बहुत ही प्रसन्नता होगी।

मुनिराज—(उस ग्रंथ को लेकर मस्तक पर चढ़ाकर देखते हुए) गोविन्द! यह ग्रंथ तो बहुत प्राचीन है, यह तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुआ ?

ग्वाला—(हाथ जोड़कर) गुरुदेव! एक दिन मैं जंगल में गाय चराने गया था, वापस लौट रहा था तो वृक्ष की कोटर में मुझे यह ग्रंथ मिला, मैं इसे घर ले आया और तब से लगातार इसकी पूजा किया करता हूँ किन्तु स्वामी! यह ग्रंथ वहाँ रखा किसने ?

मुनिराज—गोविन्द! ऐसा लगता है कि इस ग्रंथ के द्वारा पहले भी मुनियों ने यहाँ भव्यजनों को उपदेश दिया है, पूजा-महोत्सव द्वारा जिनधर्म की प्रभावना की है, अनेक भव्यजनों को कल्याणमार्ग में लगाकर सच्चे मार्ग का प्रकाश किया है और बाद में इस ग्रंथ को वृक्ष की कोटर में रखकर विहार कर गए हैं। तुम चाहो तो इसे अपने पास रखकर पूजा करो।

ग्वाला—(विनयपूर्वक हाथ जोड़कर) स्वामिन्! मैं तो इसमें कुछ भी समझ नहीं पाऊँगा पर अगर यह आपके पास में रहेगा तो न जाने कितने भव्य जीवों को ज्ञान का अमृत पिलाकर उनका कल्याण करेगा।

मुनिराज—ठीक है भव्यात्मन्! तुम यही चाहते हो तो मैं इसे ले जाता हूँ।

ग्वाला—(खुश होकर) प्रणाम गुरुवर प्रणाम! आज मैं

धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया (बार-बार प्रणाम करता है)

मुनिराज—(प्रसन्न होकर) वत्स! तुम्हारा कल्याण हो।

सूत्रधार—इस प्रकार मुनिराज उस ग्रंथ को लेकर चले जाते हैं। गोविन्द ग्वाले को उस गांव से अत्यधिक प्रेम था। एक बार गोविन्द का स्वास्थ्य बहुत ज्यादा खराब हो गया, जब उसने यह जान लिया कि मेरी मृत्यु निश्चित है तो उसने उसी गांव में जन्म लेने का निदान कर लिया और मरकर निदान के फलस्वरूप उसी कुरुमरी गांव के चौधरी अर्थात् श्रेष्ठी का पुत्र हो गया जो विलक्षण बुद्धि का धनी और अत्यन्त रूपवान था, जिसकी सुन्दरता देख लोगों की आँखें उस पर से नहीं हटती थीं।

-अगला दृश्य-

(एक 5-6 वर्ष का अत्यन्त सुन्दर बालक खेल रहा है, लोगों की दृष्टि उस पर से नहीं हट रही है, लोग उसे देखने के लिए वहीं खड़े हो जाते हैं और चर्चा करते हैं)

श्रावक 1—(दूसरे से) भइया धनदत्त! देखो तो कितना सुन्दर बालक है।

श्रावक 2—(पहले से) हाँ जिनदत्त! मेरी तो इसके ऊपर से नजर ही नहीं हट रही है।

श्राविका 1—भाई, जी करता है मैं यहीं बैठकर इसकी बाललीला देखती ही रहूँ।

श्राविका 2—लेकिन ये है किसका पुत्र ?

श्रावक 1—अरे काकी! तुझे नहीं मालूम, यह अपने गांव के सेठजी का पुत्र है।

श्राविका 2—(आश्चर्य) क्या, यह सेठजी का पुत्र है ?

श्रावक 2—हाँ बहन! अपने सेठजी का पुत्र है, यह सेठ के समान ही बड़ा धर्मात्मा है, छोटा है पर रोज मंदिर जाता है।

श्राविका 1—भाइयों! बहुत पुण्य के उदय से ही ऐसे पुत्र प्राप्त होते हैं। जरूर सेठजी ने पूर्व जन्म में विशेष पुण्य किया होगा, जो उन्हें ऐसी सन्तान मिली है।

सूत्रधार—सभी चर्चा करते हुए चले जाते हैं। धीरे-धीरे वह बालक युवावस्था को प्राप्त हो जाता है, एक दिन वह कहीं जा रहा था, तभी उसे सामने धर्मोपदेश सुनाते हुए एक मुनिराज दिख जाते हैं।

-अगला दृश्य-

(मुनिराज बैठे हैं, लोग उनके पास बैठे हैं, श्रेष्ठीपुत्र उधर से निकलकर सोचता है)—

श्रेष्ठीपुत्र—अरे! ये तो कोई दिगम्बर मुनिराज हैं, ये तो सभी को उपदेश सुना रहे हैं, पास में जाकर देखता हूँ (पास से देखकर) अरे! ऐसा क्यों लगता है कि मैंने इन्हें कहीं देखा है, मेरा इनसे पूर्व का परिचय है।

(तभी उसे जातिस्मरण हो जाता है और वह मुनिराज के चरणों में जाकर साष्टांग लेट जाता है)

श्रेष्ठीपुत्र—(मुनिराज के चरणों में नमन करते हुए) हे गुरुदेव! आपकी जय हो, आपकी जय हो, आज आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया।

मुनिराज—तुम्हारा कल्याण हो पुत्र! कहो, तुम कौन हो ?

श्रेष्ठीपुत्र—(हाथ जोड़कर) स्वामिन्! मैं कुरुमरी गांव के सेठ का पुत्र हूँ। हे प्रभो! क्या आपको आज से 15-20 वर्ष पुरानी कुछ घटना याद है ?

मुनिराज—(चिंतन करते हुए) कौन सी घटना वत्स ?

श्रेष्ठीपुत्र—हे योगिराज! वर्षों पूर्व गोविन्द नाम के एक ग्वाले ने आपको एक ग्रंथ भेंट में दिया था।

मुनिराज—हाँ, हाँ, मुझे अच्छी तरह से याद है। मगर तुम्हारा उससे क्या संबंध है ?

श्रेष्ठीपुत्र—स्वामिन्! वह ग्वाले का जीव मैं ही हूँ, उस पुण्य के प्रताप से मैं सेठ का पुत्र हुआ हूँ। आज आपके दर्शन करते ही मुझे जातिस्मरण हो आया और मैं आपके दर्शनार्थ आ गया, कृपया मुझे उपदेश देकर कृतार्थ करें।

मुनिराज—अति उत्तम! देखो भव्यात्मन्! यह जिनधर्म प्राणी मात्र को अपनी आत्मा का कल्याण करने की शिक्षा देता है। इस संसार में प्राणी के लिए जिनधर्म ही सहाई है अतः उत्तम कुल, उत्तम शरीर और सद्बुद्धि को प्राप्तकर भव्य जीवों को चाहिए कि वे शीघ्र ही अपनी आत्मा का कल्याण कर लें अन्यथा काल कब आकर किसे मृत्यु का ग्रास बना ले, कुछ नहीं पता।

श्रेष्ठीपुत्र—(कुछ सोचकर) हे गुरुदेव! मैं भी अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ अतः आप मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर मुझ पर महान उपकार करें।

मुनिराज—वत्स! तुमने बहुत ही उत्तम विचार किया है, इस जैनेश्वरी दीक्षा से ही आत्मा का कल्याण संभव है।

सूत्रधार—वह श्रेष्ठीपुत्र मुनिराज से दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करने लगे, दिनोंदिन उनके हृदय की पवित्रता बढ़ती गई और आयु के अंत में शांतिपूर्वक मृत्यु का वरण कर पुण्योदय से वे कौण्डेश नाम के राजा हुए। यह कौण्डेश राजा बहुत ही शूरवीर था, जो तेज में सूर्य की टक्कर लेता था, सुन्दरता में कामदेव को फीका करता था और शत्रु जिसके नाम से कांपते थे, ऐसे राजा के गुणों की चर्चा पूरे राज्य में चलती थी।

-अगला दृश्य-

(सारी प्रजा में राजा के गुणों की चर्चा चल रही है)

प्रजा के लोग – श्रावक 1 – भइया! हम तो धन्य हो गये जो हमें ऐसा राजा मिला जो महापराक्रमी, महादयालु और न्यायनीति से राज्य का संचालन करता है।

श्रावक 2 – हाँ भाई! बड़े-बड़े शत्रु भी इनका नाम सुनकर कांप जाते हैं।

श्रावक 3 – ऐसे सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापालक राजा के राज्य में इसीलिए तो हम सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

श्रावक 4 – भइया! यह तो हम सबका पुण्य है, जो ऐसे महाप्रतापी महाराजा हमें प्राप्त हुए हैं।

श्राविका 1 – भाइयों! अपने महाराजा प्रतापी होने के साथ-साथ कितने सुन्दर हैं, उनको देखो तो लगता है बस देखते रहो।

श्राविका 2 – हाँ बहन! जरूर पूर्वजन्म में उन्होंने कुछ विशेष पुण्य किया होगा, जो वे सर्वगुण सम्पन्न हैं।

श्राविका 3 – मैं तो सदैव भगवान से कहती हूँ कि ऐसे राजा के समान पुत्र सबको प्राप्त हों, जिनसे उनके कुल का गौरव सदैव वृद्धि को प्राप्त हो।

एक वृद्धा माँ – भगवान करें मेरे कौण्डेश महाराज युग-युग जिएं, यशस्वी हों और उनकी कीर्ति दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़े, हमारी उम्र भी उन्हें लग जाए।

सभी – (जोर से) कौण्डेश महाराज की जय, कौण्डेश महाराज की जय।

सूत्रधार – इस प्रकार सारी प्रजा महाराज का गुणगान करते नहीं थकती थी। देखते-देखते कौण्डेश राजा का काफी समय इसी प्रकार सुखपूर्वक व्यतीत हो गया। एक दिन ऐसा कोई निमित्त मिला कि उन्हें संसार से वैराग्य हो गया।

-अगला दृश्य-

(राजा अपने कक्ष में गहन चिंतन में निमग्न हैं, तभी मंत्री एवं सेनापति वहाँ प्रवेश करते हैं)

राजा – (मन में) ओह! यह जीवन कितना नश्वर है, शरीर क्षणभंगुर है। प्राणी बालक से युवा और युवा से वृद्ध हो जाता है और धीरे-धीरे काल के गाल में समाहित हो जाता है। बड़े पुण्य से उत्तम कुल, उत्तम शरीर एवं उत्तम धर्म मिलता है अतः इस उत्तम बुद्धि का सदुपयोग अब आत्मकल्याण में करके मुझे अपनी मानव पर्याय को सार्थक कर लेना चाहिए।

(तभी मंत्री-सेनापति प्रवेश कर) **मंत्री –** राजाधिराज की जय हो।

सेनापति – स्वामी! हमारा प्रणाम स्वीकार करें।

राजा – (चौंककर) आइए, आइए मंत्रिवर! सेनापति! कहिए किस प्रयोजन से आना हुआ। क्या प्रजा में कोई कष्ट है।

मंत्री – नहीं स्वामिन्! ऐसी कोई बात नहीं है, आपके शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी है।

सेनापति – हाँ स्वामी! चारों दिशा में आपकी कीर्ति व्याप्त हो रही है। प्रभो! आज्ञा दें तो एक प्रश्न पूछूँ ?

राजा – अवश्य, कहिए क्या पूछना है ?

सेनापति – (हाथ जोड़कर) हम दोनों जब अंदर आए तो आप गहन चिंतन में थे, वह चिंता क्या है राजन् ?

राजा – सेनापति! देखो ना, यह शरीर कितना नश्वर है, संसार की अस्थिरता देख मन में बार-बार वैराग्य उमड़ रहा है, सोचता हूँ जितनी जल्दी हो सके आत्मा के कल्याण हेतु जैनेश्वरी दीक्षा ले लूँ।

सेनापति – स्वामी! आप तो इतने बड़े साम्राज्य के अधिपति हैं। आप इन बातों की ओर कहाँ चले गए, दिव्य सुख आपका इंतजार कर रहे हैं, उनका उपभोग कीजिए।

मंत्री – प्रभो! आप सुखों का उपभोग करने के साथ-साथ पुण्य कर्मों को भी कर रहे हैं, फिर ऐसा चिंतन क्यों ?

राजा – मंत्रिवर! ये विषय-भोग रोग के समान हैं। सम्पत्ति, राज्य सम्पदा बिजली की तरह चंचल है, जो देखते ही देखते नष्ट हो जाने वाली है। यह शरीर मांस, रुधिर, मल आदि महा अपवित्र वस्तुओं से भरा है इसलिए मुझे शीघ्र ही जिनधर्म की शरण लेनी चाहिए।

सूत्रधार – मंत्री, सेनापति आदि के द्वारा बार-बार समझाने पर भी कौण्डेश राजा राज्य, विषयसुख आदि से उदासीन होते गए और जैनधर्म के रहस्य को जानने वाले उन महाराज कौण्डेश के हृदय में वैराग्य भावना निरन्तर वृद्धिंगत होती गई, उन्हें अब घर कैदखाने के समान दिखने लगा अतः उन्होंने अपने पुत्र को राज्य सौंप दीक्षा का विचार किया।

-अगला दृश्य-

(अन्तःपुर में राजा अपनी रानी और पुत्र के साथ बैठे हैं। राजा कहते हैं –)

राजा – (रानी से) महारानी! मुझे राज्य सम्पदा और भोगों से अरुचि हो गई है अतः मेरी इच्छा है कि मैं अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करूँ।

रानी – (आश्चर्य से) स्वामी! आप यह कैसी बात कर रहे हैं ? यह राज्य आपके बिना कैसे चलेगा ? मैं आपके बिना

कैसे रह पाऊँगी ?

राजा—देखो महारानी! इस जीवन का कोई भरोसा नहीं, शरीर नाशवान है। मुझे उत्तम कुल, उत्तम शरीर मिला है जिसका मुझे सदुपयोग करना चाहिए।

रानी—(आँखों में अश्रु भरकर) किन्तु महाराज! (रोने लगती है)

राजा—महारानी! यह मोह ही तो भव-भव में भटकाता है और इसे ही मुझे जीतना है अतः कल ही मैं पुत्र का राज्याभिषेक कर जैनेश्वरी दीक्षा लेना चाहता हूँ।

पुत्र—(विह्वल होकर) किन्तु पिताश्री! मैं आपके बिना राज्य संचालन कैसे कर पाऊँगा ?

राजा—(पुत्र के सिर पर प्यार से हाथ फेरकर) पुत्र! मैंने भी तो इसी प्रकार राज्य संभाला था फिर तुम तो मुझसे भी योग्य हो। (पुनः सैनिकों से) सैनिकों! जाओ महामंत्री को बुलाकर लाओ।

सेवक—जो आज्ञा स्वामी! (सेवक जाता है और महामंत्री के साथ प्रवेश करता है)

महामंत्री—महाराज की जय हो! स्वामी! आपने मुझे याद किया ?

राजा—महामंत्री जी! युवराज के राज्याभिषेक की तैयारी कीजिए, कल शुभ मुहूर्त में हम इनका राज्याभिषेक करके राजा घोषित करेंगे।

महामंत्री—परन्तु महाराज........

राजा—(बात काटकर) मंत्रिवर! अब मुझे राज्यवैभव में कोई रुचि नहीं है, मैं अब शीघ्र दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ अतः शीघ्र ही शुभ मुहूर्त निकलवाइए।

मंत्री—जो आज्ञा स्वामी! (प्रस्थान करते हैं)

सूत्रधार—महामंत्री चले जाते हैं। राजा शुभ मुहूर्त में अपने पुत्र को राज्याधिकार सौंप स्वयं जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन कर निर्ग्रन्थ गुरू के पास पहुँचकर उनसे दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं और घोर तपश्चरण कर शास्त्रज्ञान के प्रभाव से श्रुतकेवली हो जाते हैं, द्वादशांग के ज्ञाता हो जाते हैं।

तो बंधुओं! आपने जाना कि ज्ञानदान का फल केवलज्ञान की प्राप्ति है, उन कौण्डेश महाराज ने तो मात्र कोटर में पड़ा एक शास्त्र मुनिराज को दिया था फिर जो भव्य जीव ज्ञानदान स्वरूप ग्रंथ छपाते हैं, शास्त्र देते हैं, उनको धन, यश, ऐश्वर्य, उत्तम कुल, गोत्र, दीर्घायु आदि नाना प्रकार के सुख प्राप्त हो जाएं तो कौन सी बड़ी बात है अतः सदैव भव्यात्माओं को ज्ञानदान में तत्पर रहना चाहिए।

''जय बोलिए उत्तम त्यागधर्म की जय''

(9) उत्तम आकिंचन्य धर्म (नाटिका)

-ब्र. कु. दीपा जैन (संघस्थ)

(प्रातःकाल की मंगल बेला है, 17-18 साल की एक बालिका भारती स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी सहेली ऋद्धि के घर पहुँच जाती है। ऋद्धि भी मंदिर जाने के लिए तैयार हो रही है, साथ में कुछ गुनगुना भी रही है।)

भारती—ऋद्धि! तुम अभी तक तैयार नही हुई ? और तुम तो आज बहुत खुश नजर आ रही हो क्या तुमने कोई नई फिल्म देखी है क्या ?

ऋद्धि—नहीं भारती! इस समय दशलक्षण पर्व चल रहे हैं, मैंने दस दिनों के लिए फिल्म देखने का त्याग कर दिया है। आज आकिंचन धर्म है न! मैं उसी के बारे में सोच रही थी।

भारती—अरे हाँ! मैं तो भूल ही गई थी।

ऋद्धि—आकिंचन का मतलब क्या होता है, क्या तुम जानती हो ?

भारती—ज्यादा तो नहीं, हाँ! इतना जानती हूँ कि मेरा कुछ नहीं है, ऐसी भावना करना आकिंचन धर्म है।

दोनों मंदिर के लिए चल पड़ती हैं और रास्ते में बातें भी कर रही हैं।

ऋद्धि—इस बार तो जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से पंडित जी आए हैं, बहुत अच्छा प्रवचन करते हैं।

भारती—हाँ ऋद्धि! यहाँ के समाज वालों ने रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी से निवेदन किया था, तो पंडित जी आए हैं। इस बार तो मंदिर जी में रात्रि में बड़ा आनंद आता है।

बातें करते-करते दोनों मंदिर जी में पहुँच जाती हैं, वहाँ दर्शन-आरती करके सभा में बैठ जाती हैं। (पंडित जी अपना वक्तव्य प्रारंभ करते हैं)।

श्रावक 1 (खड़े होकर)—पंडित जी! इस आकिंचन धर्म का पूर्ण पालन कौन करते हैं।

पंडित जी—नग्न दिगम्बर मुनिराज पूर्णरूप से इस धर्म का पालन करते हैं। आप देखते हैं, उनके पास रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता।

श्रावक 2—क्या हम लोग भी इस धर्म को धारण कर सकते हैं ?

पंडित जी—हाँ-हाँ क्यों नहीं ?

श्रावक 3—लेकिन हम लोगों के पास तो बहुत परिग्रह रहता है।

पंडित जी—उस बहुत परिग्रह में से जितने परिग्रह की आवश्यकता नहीं है, उसका त्याग कर देने से भी इस धर्म का आंशिक पालन हो जाता है।

श्रावक 4—पंडित जी! वह कैसे हो सकता है ?

पंडित जी—सुनो! मैं बताता हूँ आप श्रावकों के लिए आचार्यों ने 5 अणुव्रत बताएं हैं-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाण, अणुव्रत!

श्रावक 5—इनका क्या मतलब होता है, पण्डित जी!

पंडित जी—हम पाँचों पापों का पूर्ण त्याग नहीं कर सकते हैं, तो उनका आंशिक त्याग करना हमारे लिए आवश्यक है। देखिए-संकल्पपूर्वक किसी जीव को नहीं मारना अहिंसाणुव्रत है।

महिला 1—लेकिन पंडित जी! घर में चींटी आदि इतना परेशान करती हैं, तो लक्ष्मण रेखा तो खींचनी ही पड़ती है।

पंडित जी—नही! लक्ष्मण रेखा खींचना संकल्पी हिंसा में आता है, आप अच्छी तरह सफाई करके कपूर का छिड़काव करें, चीटीं नहीं आएगी।

(कुछ क्षण रुककर पंडित जी पुनः बोलने लगते है।)

इसी प्रकार झूठ, चोरी, कुशील का त्याग करें और अपने परिग्रह का प्रमाण करें।

महिला 2—पण्डित जी! परिग्रह का प्रमाण कैसे कर सकते हैं ?

पंडित जी—सोना, चांदी, जमीन, जायदाद आपको अधिक से अधिक जितना रखना हो, उसकी सीमा कर लें, जिससे तीनलोक की अथाह सम्पत्ति के पाप से आप बच जायेंगे।

श्रावक 1—यह तो पंडित जी! आपने बहुत अच्छी बात बताई है।

पंडित जी—हाँ! इस महानव्रत को धारण करने से बहुत उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

श्रावक 2—इसका कोई उदाहरण भी है पंडित जी।

पंडित जी—हाँ है ना! आज से लगभग 70-80 साल पहले की बात है, इस युग के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज अपने संघ सहित दक्षिण भारत में विराजमान थे। उनके पास मुम्बई के सेठ पूनमचंद घासीलाल जी ने अणुव्रत ग्रहण किए। उस समय उन्होंने 1 लाख रुपये का प्रमाण कर लिया।

श्रावक 3—बस एक लाख रुपये ?

पंडित जी—हाँ उस समय 1 लाख रुपये की बहुत कीमत थी ?

श्रावक 4—फिर क्या हुआ पंडित जी ?

पंडित जी—व्रत के प्रभाव से उनका धन बढ़ता चला

गया और प्रमाण से अधिक हो गया।

श्रावक 5—तो उन्होंने उस धन को अपने बच्चों के नाम कर दिया होगा?

पंडित जी—नहीं उन्होंने ऐसा नहीं किया वे फिर महाराज जी के पास गए उनको सारी बात बताई। यह निर्णय हुआ कि इस धन से महाराज जी के संघ को सम्मेदशिखर की यात्रा कराई जाए।

उन्होंने ऐसा ही किया और इसके कारण उन्होंने महान पुण्य संचित कर लिया। आज जब आचार्यश्री की महिमा गाई जाती है, तब उनके संघपति के रूप में पूनमचंद घासीलाल का नाम अवश्य लिया जाता है।

महिला 1—हाँ! मैंने पारस चैनल के माध्यम से पूज्य ज्ञानमती माताजी के मुख से कई बार उनका नाम सुना है।

पंडित जी—हाँ भाई! इसलिए आज सभी को अपने जीवन में अणुव्रत ग्रहण करने की भावना अवश्य करना है, इसी के प्रभाव से हम आगे एक दिन पूर्ण आकिंचन अर्थात् मुनि बनकर अपनी आत्मा का कल्याण कर सकेंगे।

महिला 2—वाह पंडित जी, आकिंचन धर्म की महिमा सुनकर तो आज मन प्रसन्न हो गया।

पंडित जी—जय बोलो! उत्तम आकिंचन धर्म की जय।

सामूहिक स्वर—सभी लोग एक भजन गुनगुनाते हैं।

तर्ज—अरे रे मेरी जान है..........

अरे दशधर्म है आया, पर्व दशलक्षण लाया
कर ले धरम तू भव्य प्राणी रे-2
उत्तम क्षमादि है इनका नाम।
इनका नाम लेने से कटते हैं पाप।।
कुछ भी मेरा नहिं ये अकिंचन धरम है।
इसके पालन से मिलता स्वर्ग मोक्ष है।।
अरे दश.....
श्रावक पंचाणुव्रत ग्रहण करते।
और पाँच पाप से भी है बचते।।
मुनि पंच पाप का पूर्ण त्याग करते।
सभी उनके चरणों में नमन करते।।
अरे दश.......

बोलो उत्तम आकिंचन्य धर्म की जय!

(10) उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (नाटिका)

-ब्र. कु. श्रेया जैन (संघस्थ)

(नोट - ध्यान दें! नाटक मंचन में जम्बूकुमार एवं उनकी चार पत्नियों को प्रस्तुत करने हेतु बालक-बालक अथवा बालिका-बालिका से ही रोल करायें।)

भूमिका—आत्मा ही ब्रह्म है, उस ब्रह्मस्वरूप आत्मा में चर्या करना सो ब्रह्मचर्य है अथवा अनुभूत स्त्री का स्मरण, उनकी कथाओं का श्रवण और उनसे संसक्त शयन, आसन आदि इन सबका त्याग करना ब्रह्मचर्य है अथवा "स्वतंत्र वृत्ति का त्याग करने के लिए गुरुओं के पास रहना, सो ब्रह्मचर्य है।" जिस प्रकार एक (1) अंक के बिना सभी शून्य व्यर्थ हैं उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत के बिना अन्य व्रतों का फल नहीं मिल सकता।

आज के इस भौतिकता के युग में मानव गलत मार्ग का अनुसरण कर रहा है, वासना के मद में आकर वह अपनी स्त्री-माँ-बहन में अंतर नहीं समझ रहा है। वह नहीं जानता कि उसके इन दुष्कृत्यों से उसकी क्या गति होगी। आज की नारी अपना देश तो दूर अपने घर में ही सुरक्षित नहीं है।

ऐसे वातावरण को देखते हुए आज के माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को ऐसी महान आत्माएं जिन्होंने ब्रह्मचर्य का दृढ़ होकर पालन किया है, उनकी कहानियाँ सुनाएं। जहाँ ब्रह्मचर्य अणुव्रत के पालन में सेठ सुदर्शन, सती सीता आदि प्रसिद्ध हुए हैं। वहीं अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन में जम्बूस्वामी प्रसिद्ध हुए, तो आइए इस लघु नाटिका के माध्यम से हम श्री जम्बू स्वामी के चरित्र को जाने।

सूत्रधार—राजगृह नगर में अर्हद्दास सेठ-सेठानी जिनमती अपने भवन में सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं। एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में सेठानी जिनमती पाँच स्वप्नों को देखती हैं। प्रातःकाल उठकर जिनेन्द्र भगवान का स्मरण कर स्नानादि से निवृत्त होकर वे सेठ जी के पास अपने स्वप्नों को बताने जाती हैं।

सेठानी—(चरण स्पर्श कर)-हे स्वामिन्! आज मैंने रात्रि के पिछले प्रहर में जम्बूवृक्षादि, पाँच स्वप्नों को देखा है। मैं आपसे उनका फल जानना चाहती हूँ।

सेठ जी—सेठानी जी! आपके स्वप्न तो अति उत्तम प्रतीत हो रहे हैं, चलिए हम जिनमंदिर में जाकर वहाँ विराजमान अवधिज्ञानी मुनिराज से इन स्वप्नों का फल पूछते हैं।

सूत्रधार—सेठ-सेठानी जी मंदिर की ओर प्रस्थान करते हैं, मंदिर में जाकर भगवान की अष्ट द्रव्य से पूजा कर, वहाँ विराजमान मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके बैठ जाते हैं।

सेठ-सेठानी—नमोस्तु गुरुदेव!

मुनिराज—सद्धर्मवृद्धिरस्तु।

सेठ जी—हे महाराज! आज सेठानी जिनमती ने रात्रि के पिछले प्रहर में जम्बूवृक्षादि आदि पाँच स्वप्नों को देखा है। अतः हम आपसे उन स्वप्नों का फल जानना चाहते हैं। कृपया आप हमें बताने की कृपा करें।

मुनिराज—हे देवी! आपने अति उत्तम स्वप्न देखे हैं, इन स्वप्नों को देखने से तुम्हें एक चरम शरीरी पुत्र का लाभ होगा। यह कोई साधारण बालक नहीं होगा, छठे स्वर्ग में विद्युन्माली नामक अहमिन्द्र देव स्वर्ग से चयकर तुम्हारा पुत्र होगा।

सेठ-सेठानी—गुरुवर! आपने स्वप्नों का फल बताकर हमें कृतार्थ किया। नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

सूत्रधार—ऐसा कहकर सेठ-सेठानी अपने भवन में वापस आ जाते हैं। इस खबर को जानकर पूरे भवन में हर्षोल्लास का वातावरण छाया हुआ है। तभी एक दिन विद्युन्माली नामक अहमिंद्र अपनी आयु पूर्णकर सेठानी जिनमती के गर्भ में आता है और नव मास पश्चात् फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष पूर्णिमा के प्रातःकाल में पुत्र का जन्म होता है।

नगर की स्त्रियाँ—सेठ जी! बधाई हो! आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है।

(सेठ जी अत्यन्त हर्षित होते हैं और भवन में उत्सव मनाया जाता है। जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाता है, तब सेठ-सेठानी आपस में उसका नाम रखने की चर्चा करते हैं।)

सेठानी जी—सेठ जी! हम अपने का पुत्र का क्या नाम रखें ?

सेठ जी—सेठानी जी! आपने अपने स्वप्नों में सर्वप्रथम जम्बूवृक्ष को देखा था तो हम इसका नाम "जम्बू" रखेंगे। अब सभी लोग इस बालक को "जम्बुकुमार" कहेंगे।

सूत्रधार—सेठानी जी नाम सुनकर प्रसन्न होती हैं। बालक अपनी बालक्रीड़ाओं से सबको प्रभावित करता हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है और एक दिन वह युवावस्था को प्राप्त कर लेता है। जम्बू कुमार बचपन से ही सभी कलाओं एवं गुणों में विख्यात थे। साथ ही पवित्रमूर्ति और पुण्यात्मा थे। एक दिन राजगृही नगरी के उपवन में अपने पाँच सौ शिष्यों सहित श्री सुधर्माचार्यवर्य पधारते हैं। जम्बू कुमार नगर में पधारे हुए मुनिराज के दर्शन के लिए जाते हैं। आगे-

(जम्बूकुमार मुनिराज के पास पहुँचकर)

जम्बू कुमार—नमोस्तु आचार्यवर्य।

आचार्यवर्य—सद्धर्मवृद्धिरस्तु वत्स!

जम्बू कुमार—आचार्यश्री! मैं अपने पूर्व भव के वृत्तान्त को जानना चाहता हूँ। किन पुण्य कर्मों के कारण आज मैंने इस मानव जन्म को प्राप्त किया है ?

आचार्यवर्य—सुनो कुमार! तुम पूर्व भव में चक्रवर्ती के पुत्र शिवकुमार थे। तुम्हारी इच्छा जैनेश्वरी दीक्षा लेने की थी, लेकिन अपने पिता के मोह के वश हो उनका अत्यन्त विलाप देखकर तुमने जैसे-तैसे घर में रहना स्वीकार किया लेकिन तुमने उसी दिन से ब्रह्मचर्य व्रत का अखण्ड पालन किया। तुमने 500 स्त्रियों के बीच में रहते हुए भी असिधारा व्रत (पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत) का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप तुम अंत में मुनिपद धारणकर समाधिमरण प्राप्त करके छठे स्वर्ग में विद्युन्माली अहमिन्द्र हुए, वहाँ से चयकर तुम सेठ के घर में उत्पन्न हुए हो।

(अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर 'कुमार' संसार से मुक्त कराने वाली जैनेश्वरी दीक्षा की याचना करते हैं।)

जम्बूकुमार (आचार्यवर्य से)—आचार्यश्री! आप मुझे इस भवसागर से पार कराने वाली, भव भ्रमण मिटाने वाली जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।

आचार्यवर्य—वत्स! तुम पहले घर में जाकर अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आओ, तभी मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।

(जम्बू कुमार बिना इच्छा के ही गुरु के वचन अनुरूप घर जाकर माता-पिता से आज्ञा मांगते हैं)

जम्बूकुमार—माँ! पिताजी! मैं अब जैनेश्वरी दीक्षा लेना चाहता हूँ। कृपया आप लोग मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान करें। आपकी आज्ञा के बाद ही श्री सुधर्माचार्यवर्य मुझे दीक्षा प्रदान करेंगे, अन्यथा नहीं।

(पुत्र के इस प्रकार के वचनों को सुनकर माता तो विलाप ही करने लगती हैं, तब पिताजी अपने पुत्र को समझाते हैं)

सेठ जी—पुत्र! ये तुम क्या कह रहे हो ? इस यौवनावस्था में दीक्षा की बात तुम्हारे मन में कैसे आई ? अभी तो तुम्हारे विवाह करने की उम्र है, तुमको तो इस परिवार को आगे बढ़ाना है।

सेठानी जी—पुत्र! ये आज तुमको क्या हो गया है, जैनेश्वरी दीक्षा और तुम ? नहीं हम तुम्हें दीक्षा की आज्ञा नहीं देंगे, हम तो तुम्हारा विवाह कराएंगे।

सूत्रधार—(मोह के वश में आकर माता-पिता जैसे-तैसे राजगृह नगर के सागरदत्त आदि चार सेठों की चार-पुत्रियों के साथ जम्बू कुमार का विवाह करा देते हैं, यह सोचकर कि विवाह के बाद कुमार स्त्रियों में लिप्त होकर दीक्षा की बात भूल जाएंगे। लेकिन सेठानी जी चिंतित हुई बाहर घूमती हैं देखती हैं कि जम्बू कुमार जो अपनी चारों स्त्रियों के साथ एक कमरे में बैठकर उनसे अलिप्त रहते हुए वैराग्य को बढ़ाने वाली कथाओं से रात्रि बिता रहे हैं।)

स्त्रियाँ—हे स्वामिन! आपने हमसे विवाह किया है, कुछ दिन तो भोग-भोगकर हमें प्रसन्न कीजिए! आपके बिना हम कैसे रहेंगी ? आप अभी दीक्षा मत लीजिए।

कुमार—हे देवियों! किन भोगों की बात कर रही हो तुम लोग ? ये भोग हमेशा दुःख ही प्राप्त कराते हैं, इनसे प्राणी कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। अतः हमें संसार के परिभ्रमण को मिटाने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा धारण करनी ही पड़ेगी।

सूत्रधार—और इस प्रकार पूरी रात्रि कुमार और उनकी पत्नियों के बीच में वार्तालाप चलता रहता है। लेकिन चारों स्त्रियाँ मिलकर भी अपने पति को अपने पथ से डिगा नहीं पाईं। तभी जिनभवन में चोरी के निमित्त से एक चोर प्रवेश करता है। अनंतर.....

चोर—अरे वाह! आज तो इस सेठ के पुत्र का विवाह हुआ है, चार-चार बहुएं आई हैं, आज तो घर में खूब सोना-चांदी होगा, आज की चोरी से तो मैं मालामाल हो जाऊँगा।

चोर सोच ही रहा होता है, तभी उसकी नजर चिंतित अवस्था में जम्बू कुमार के कमरे के बाहर घूमती हुई सेठानी पर पड़ती है, तभी सेठानी भी उसको देखकर समझ जाती है कि ये चोर है, चोरी के निमित्त से यहाँ आया है।

चोर—क्या हुआ सेठानी जी! मैं तो आपके घर में चोरी करने आया था लेकिन आपको इस तरह इतनी रात में चिंतित अवस्था में जागता देख हैरान हूँ। क्या बात है ?

सेठानी—मैं जानती हूँ! तुम चोर हो धन लूटने के लिए आए हो, मैं तुमको जितना चाहो धन दे सकती हूँ, लेकिन तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।

चोर—आपका ऐसा क्या काम है, जो मैं कर सकता हूँ।

(सेठानी-उस चोर को कुमार के बारे में सब बता देती हैं और चोर को जम्बू कुमार के पास समझाने के लिए भेजती हैं। वे सोचती हैं शायद इस चोर के किन्हीं उपायों से मेरा पुत्र दीक्षा का ख्याल अपने मन से निकाल देगा। आगे क्या होता है ?—)

जम्बू कुमार—(चोर से) तुम कौन हो ? और हमारे कक्ष में क्या कर रहे हो ?

चोर—कुमार जी! मैं एक चोर हूँ, चोरी के लिए आपके जिनभवन में आया था, लेकिन देखा आपकी नई शादी हुई है फिर भी आप भोग-भोगने के बजाय वैराग्य की बात कर रहे हैं। आप भोगों में लिप्त न होकर जैनेश्वरी दीक्षा क्यों लेना चाहते हैं ?

जम्बू कुमार—सुनो! ये भोग संसार में परिभ्रमण का

कारण हैं। इनसे शारीरिक सुख तो मिलता है लेकिन आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिए इन भोगों को छोड़कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता है।

चोर—आप कुछ समय भोग-भोगें फिर त्याग करें, अन्यथा इन्द्रियों का दमन नहीं हो सकता।

जम्बूकुमार—यह सर्वथा गलत धारणा है जिस प्रकार अग्नि में यदि तीन लोक प्रमाण भी ईंधन डाल दो, तो भी वह तृप्त नहीं हो सकती, वह जलती ही रहेगी और उसकी ज्वालाएं बढ़ती ही चली जाएंगी, उसी प्रकार ये भोग चाहे जितने भोगे जाएं, वे कभी शरीर को तृप्त नहीं कर सकते।

(बहुत उपायों से चोर समझाने की कोशिश करता है लेकिन वह कुमार अपनी बात पर अडिग ही रहें। अंत में जम्बूकुमार सभी की उपेक्षा करके प्रातःकाल ही गुरु के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर लेते हैं। जो चोर उनको समझाने आया था, वो भी कुमार से प्रभावित होकर अपने पाँच सौ साथियों के साथ दीक्षित हो जाता है, पिता अर्हद्दास भी दीक्षा ले लेते हैं।

सेठानी जी और चारों बहुएं भी सुप्रभा आर्यिका के समीप स्त्रीलिंग को छेदने वाली आर्यिका दीक्षा ले लेती हैं।

अनंतर जिस दिन गुरु सुधर्माचार्य मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उसी दिन जम्बू स्वामी को केवलज्ञान प्रगट हो जाता है, इसलिए जम्बूस्वामी अनुबद्ध केवली कहलाएं हैं। अनंतर वे मोक्षधाम को प्राप्त कर लेते हैं।)

सार—जिसके जीवन में वैराग्यरूपी अंकुर उत्पन्न हो जाता है, वह जीव अपना तो कल्याण करता ही है, उसके निमित्त से दूसरों का भी कल्याण हो जाता है। अतः पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले शिवकुमार ने अहमिंद्र पद प्राप्त किया, अनंतर जम्बूस्वामी की अवस्था में केवली बनकर मोक्ष प्राप्त किया। धन्य है वह ब्रह्मचर्य व्रत, जिसके पालन से मोक्ष की प्राप्ति संभव है, ऐसे धर्म को हमें सदा ही ग्रहण करना चाहिए।

बोलो, उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की जय।

क्षमावणी पर्व का महत्त्व (नाटिका)

-ब्र. कु. अलका जैन (संघस्थ)

13-14 साल की एक बालिका जिसका नाम देशना है वह स्कूल से आती है और अपने बैग को एक कोने में रखती हुई चिल्लाते हुए माँ से कहती है।

देशना—माँ, मुझे बहुत तेज से भूख लगी है, मुझे जल्दी से खाना दो।

माँ—(अंदर से आती है और प्रेम से कहती है)-बेटी देशना! अपनी माँ से चिल्लाते नहीं है, बेटा।

देशना—माँ, मुझे आपका भाषण नहीं सुनना है, खाना दो वरना मैं होटल में जाकर खा लूँगी। अब तो दशलक्षण पर्व भी पूर्ण हो गया है।

तभी माँ शीघ्र खाना लाकर देती है। खाना खाने के बाद—

देशना—माँ मैं अपनी सहेली के साथ पिक्चर देखने जा रही हूँ।

माँ—बेटी देशना! तू तो पढ़ी-लिखी है और समझदार भी है। तू तो जानती है आज कितना अच्छा पर्व है और तू जा रही पिक्चर देखने।

देशना—माँ, मुझे पता है आज क्षमावणी पर्व है उसमें क्या देखना और सुनना है। यह तो हर साल आता है और पिक्चर में नई-नई चीजें देखने को मिलेंगी।

माँ—(थोड़ा गुस्सा होते हुए) नहीं बेटी! आज तुझे मैं शाम को मंदिर अवश्य ले जाऊँगी। फिर समझाते हुए-बेटा मंदिर जाने से पुण्य बंध होता है और पिक्चर देखने से पाप का बंध होता है।

देशना—माँ, कर्म बंधते कैसे हैं, हमें तो दिखाई नहीं देते।

माँ—बेटी! हमारे साथ कर्म हमेशा लगे रहते हैं। वह किसी को भी दिखते नहीं है। जो अच्छे कार्य करते हैं, उनके अच्छे कर्म बंधते हैं और खराब कार्य करते हैं तो खराब कर्म बंधते हैं।

देशना—तब तो प्रतिसमय मेरे भी अच्छे और खराब कर्म बंधते हैं। माँ, मुझे माफ कर दीजिए, मैंने आपसे ऐसी बातें करीं।

माँ—ठीक है बेटी, मैंने तुझे माफ कर दिया।

देशना—माँ, आज मंदिर में क्षमावणी पर्व पर क्या होता है।

माँ—बेटी! आज के दिन सभी लोग एक-दूसरे से साल भर में जाने या अनजाने में गलती हुई है या फिर किसी से शत्रुता है, उसके लिए क्षमायाचना करते हैं।

देशना—माँ! मेरी और पायल की लड़ाई स्कूल में काफी दिनों से चल रही है। न मैं उससे बोलती हूँ और न वह ही मुझसे बात करती है।

माँ—बेटी! ऐसा नहीं करते हैं। जाओ तुम पायल के घर जाकर उससे क्षमायाचना कर लो।

देशना—ठीक है माँ! मैं पायल के घर जाती हूँ।

(देशना पायल के घर पहुँचती है)

पायल—अरे देशना! तुम मेरे घर आज कैसे आ गईं ?

देशना—आज क्षमावणी का पर्व है। मैं तुमसे क्षमाभाव करने आई हूँ। शत्रु-मित्र सबमें समता का भाव रखना ही यह जैनधर्म हमें सिखाता है। तभी तो इन पर्वों को मनाने की सार्थकता है।

पायल—मैं अपने मन से शत्रुता को हटाकर मित्रता का भाव रखती हूँ।

देशना—तभी मेरी माँ ने आज इस पर्व का महत्त्व बताया है।

पायल—मैं भी तुमसे क्षमाभाव करती हूँ। आगे ऐसी गलती कभी नहीं करूँगी।

(देशना पायल को लेकर अपने घर जाती है। देशना की माँ और सभी लोग मंदिर में जाते हैं।

मंदिर में सभी लोग एक-दूसरे से क्षमायाचना धारण कर रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी एक-दूसरे से क्षमाभाव कर रहे हैं। मंदिर में धर्मसभा लगी हुई है। वहाँ पर पंडित जी सभी को क्षमावणी पर्व का महत्त्व बता रहे हैं।)

पंडित जी—"क्षमा वीरस्य भूषणम्" क्षमा वीरों का आभूषण है, चाहे शत्रु हो या मित्र, सबमें समता का भाव रखना चाहिए और क्षमागुण को मन में धारण करना चाहिए।

गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।

गुणी जनों को देखकर हृदय आल्हादित होना चाहिए। मनुष्य को क्रोध, वैर, भाव को छोड़कर अपना मन पावन करना चाहिए। यदि किसी से बहुत पुरानी शत्रुता भी हो तो उसे भूल जाना चाहिए और मित्रता की भावना रखनी चाहिए। अपनी वाणी को हमेशा शीतल और मधुर रखना चाहिए। अपनी भावना सदा सरल रखनी चाहिए।

वर्षा—पंडित जी! मेरी माँ आज कह रही थी कि जब पशु भी वैर को छोड़कर क्षमाभाव धारण कर लेते हैं, तो क्या हम लोग भी क्षमाभाव धारण नहीं कर सकते हैं।

पंडित जी—वाह बेटी वर्षा! तुमने बहुत बढ़िया बात कही। हम लोग क्यों नहीं धारण कर सकते, जब पशु भी क्षमाभाव धारण कर सकते हैं।